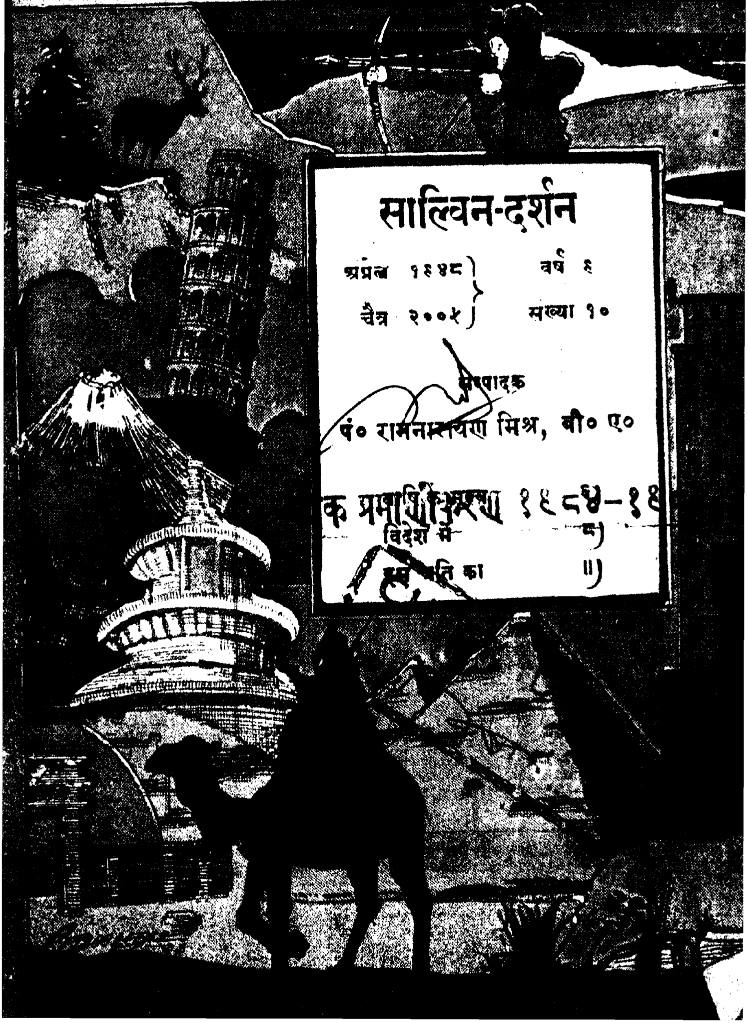
देश दर्शन

पूर्णसंख्या—६६



सात्विन-दर्शन

अप्रैल १९४८ } वर्ष ९

चैत्र २००५ } संख्या १०

सम्पादक

पं० राम[illegible]ण मिश्र, बी० ए०

विदेश में ८)

[illegible] प्रति का ॥)

विषय-सूची

सालिवन

उत्तरी ब्रह्मा में पिचीना रेलवे का अन्तिम स्टेशन है। यहां पर लगभग एक दर्जन अँग्रेज हैं और एक क्लब है। एक छोटा सा नगर है जिसमें कुछ दुकाने हैं। मिलिटरी पुलिस की जत्थी और एक पोलो खेलने का मैदान। बगल में ही शान्त इरावदी की धारा बहती है। पिचीना से कुछ दूर दक्षिण पर पिडांग गेम सैंक-चुअरी है। दो सौ साठ वर्ग मील की यह बेसिन बहुत छोटी है फिर भी ब्रह्मा में यह सबसे बड़ी है। इसमें खेल के बहुत से अच्छे ढग के जानवर रहते हैं। यहां पर सॅग के झुन्ड कुछ सैम्बर भूंकने वाले हिरन और हैं किन्तु यह प्रदेश बहुत सूखा है और बिसन तथा तथा अन्य खेल के जानवर गर्मी में दूसरी जगह चले जाते हैं। बरसात के प्रारम्भ होते वे फिर यहां लौट आते हैं। यहां से आठ मील सापजप नगर है।

पिचीनी से दो सौ बीस मील उत्तर की ओर फोर्टहर्ट है। अगर सड़क अच्छी हो तो बीस दार में मंजिल करके यहां पहुँच सकते हैं। गरमी के मौसम में

मिचीना से एक से ३८ मील तक छोटी कार भी बड़ी आसानी से जा सकती है। शुरू से लेकर फोर्टहर्ट तक के रास्ते में नीची चौड़ी पहाड़ियां ही मिलती हैं जो जंगल से ढकी हैं और झरने तथा नदियों से कटी हुई हैं। पहले दिन भर में चौदह मील चल सकते हैं। किन्तु दूसरे आठ ही मील तक। सर्दी के मौसम में इससे दूना चला जा सकता है। हर एक मंजिल के अन्त में एक छोटा सा आराम घर होता है जो प्राय: ऐसी पहाड़ियों पर होता है जहां ठंडी हवा लग सके। घर में दो कमरे होते हैं, हर एक के साथ एक स्नान घर होता है, एक भोजनालय, एक बरामदा और बहुत सी मेज़ कुर्सियां। इसके अतिरिक्त बहुत से पुराने उपन्यास और पत्रिकायें होती हैं जो प्राय: सभी पढ़ने योग्य होती हैं। कुछ उपन्यास तो १६१२ तक के लिये हुये रहते हैं। साधारण यात्री के लिये सारी मंजिलें एक सी प्रतीत होंगी किन्तु अच्छे यात्री के लिये सब में किसी न प्रकार की विचित्रता मिलेगी। यहां पर बहुत सी ऐसी साधारण वस्तुएं हैं जो ध्यान देने योग्य हैं। एक तो तीस इंच लम्बी 'मानीटर लिजर्ड' या छिपकली

है। यह नदी के किनारे बाज़ू पर दिखाई दे सकती है। फिर काले और सफेद 'हार्न बिल' हैं जिनके पीले रंग की लम्बी सी चोंच होती है। यहां जंगली बटेर हैं। और नारंगी के समान पेट वाली गिलहरियां जो गिरे हुये पेड़ों के तनों पर इधर उधर दौड़ती रहती हैं। भूंकने वाले हिरन नदी में तैर कर उसे पार कर जाते हैं।

गमनागमन भी यहां बहुत है। काचिन लोगों के छोटे छोटे गिरोह, सुम्प्राबम से आती हुई गाड़ियां खच्चरों के कारवां जो फोर्ट हर्ट से आते हैं और कभी कभी कुछ मिलिटरी पुलिस के गोरखे लोग अपनी स्त्रियों सहित छुट्टी बिताने के लिये मिचीना को जाते हुये दिखाई देते हैं—यही यहां का गमनागमन है। यहां के खच्चरों को हांकने का ढंग बहुत ही विचित्र है। हांकने वाले एक ज़ोर की आवाज़ में चीख कर उन्हें आगे बढ़ाते हैं और एक घंटा बजाते हैं। फुरसत के समय वे दर्द भरे गीत बड़ी मस्ती से अलापते हैं। यह बात नहीं है कि यहां के चीनी लोग बड़े सैलानी होते हैं। बात यह है कि इस शोरगुल से खच्चरों का मन

शान्त रहता है और वे बड़ी सरलता से रास्ते पर बढ़ते चलते हैं। अगर एक या दो मिनट के लिये यह घंटा गाना और चिल्लाना बंद कर दिया जाता है तो खच्चर भी यह समझ कर रुक जाते हैं कि अब यात्रा का अन्त आ गया। वे रुक जाते हैं, लेट जाते हैं और अपने बोझ पर लुड़कने लगते हैं। नहीं तो वे इधर उधर टहलने लगते हैं और एक अजीब खलबली मच जाती है। तिब्बत में इसी प्रकार का मनोरंजक ढंग यात्रा बैलों को हांकने में प्रयोग किया जाता है। जंगल में रास्ते के दोनों तरफ लम्बे पैरों वाले जंगली बंदरों का झुंड छिपे छिपे उस कारवां के साथ चिल्लाता और चीखता हुआ आगे बढ़ता है। पेड़ों पर विशेष कर बांसों पर असंख्य कीड़ा पकड़ने वाली चिड़ियां चह-चहाती रहती है, जिसकी ध्वनि ऐसी मालूम होती है मानो पास ही कहीं से मशीन गन छूटने की आवाज़ आ रही है। इस प्रकार यहां जङ्गलों की वह शान्ति जो मुर्दाघाट पर होती है, यहां तनिक भी नहीं है। म्यूज़ियम में रखने के लिए यहां बहुत चीजें मिल सकती हैं। गुबरैले और दूसरे कड़े चमड़े वाले कीड़े

जैसे 'ग्रासहापर' और बिच्छू छोटे छोटे बक्सों में लकड़ी का चूर्ण रख कर बन्द किये जाते हैं। तितलियां तह करके तिकोने लिफाफे में रक्खी जाती हैं। मक्खियां सावधानी से पतले कागज़ की तस्तरियों में छोड़ कर बक्स में बन्द की जाती है। एक 'कार्डबोर्ड' सन्दूक में प्रायः तीस ऐसी तस्तरियां होती हैं। यह प्रदेश कुछ अधिक सर्द और गीला है। इस कारण कीड़े हमेशा के लिये बन्द नहीं किये जा सकते। उन्हें समय समय पर निकाल कर सुखाना और हवा देनी पड़ती है। छोटी लाल रंग की चीटियां यहां दो सौ से भी अधिक प्रकार की होती हैं यहीं पर मासम जय पड़ता है।

मासमजय से लेकर सीमान्त प्रदेश तक दो तरह की मक्खियां (हार्स फ्लाई) बहुत तंग करती हैं। एक तो भूरे रंग की आध इंच लंबी होती-जो सीधी और कम बदमाश होती है। दूसरी लम्बी तो उतनी ही होती है किन्तु मोटी, धारीदार, भयानक सूरत की शरीर वाली होती है जो सचमुच शैतान है। इसके बड़ी बड़ी आखें होती हैं। कमीज़ पर बैठ जायेंगी, आप को पता न लगेगा। ये दोनों बड़ी आसानी से और

बहुत ज़ोर से काट सकती हैं। लेकिन काटते समय इतनी देर तक बैठती हैं कि उन्हें बड़ी आसानी से मारा जा सकता है। यहाँ अप्रैल में उतनी ही गर्मी पड़ी है जितनी इंगलैंड में गरमी की हवा चलने पर। गरमी में ये मक्खियां यहां नहीं रहतीं परन्तु सर्दी में वापस आ जाती हैं। मासमजप में भूमध्य रेखीय प्रान्तों की तरह ही सारा वातावरण है। वही बनस्पति और सड़े पानी की कड़ी बदबू, वही चिलचिलाती तर गरमी और वही हवा की मुर्दनी कि पत्ते तक न खड़कें चिड़ियां और जानवर का जीवन इससे दुखी होता है क्योंकि उन्हें गर्मी सताती है। सब तरह के कीड़े बहुत व्यथित रहते हैं और हज़ारों पेड़ों पर लगातार उसी तरह शोर मचाते रहते हैं जैसे बहुत से चाकू तेज़ करने वाले शान चला रहे हों।

खामहो से नांग काई तेरह मील है। नांग काई के दक्षिण में मछलियों का शिकार ब्रह्मा भर में सबसे अच्छा है यह दूसरी बात है कि मिचीना संगम में कुछ मछलियां यहां की मछलियों से बड़ी भी हों। यहां से दो मील बाद मुड़ने पर मक्खियों का समूह फिर मिलता

है। नांग खाई से तेरह मील पर फोर्ट हर्ट है। रास्ता घास का है और चारों ओर जंगल है। बीच बीच में चन्द्राकार पहाड़ उत्तर की ओर मिलते हैं जिनमें से कुछ गर्मी के दिनों में भी बरफ से ढके रहते हैं। यहां सड़क धूल से भरी और शून्य है। बढ़ते चलिये आप को कहीं पर इस एकान्त को भंग करने का कोई साधन न मिलेगा।

फोर्ट हर्ट ब्रह्मा का एकदम उत्तरी नाका है। यहां एक जत्थी मिलिटरी पुलिस की भी रहती है जिसमें ७० के लगभग आदमी होते हैं। ये सब गोरखे होते हैं। इस स्थान का नाम भ्रम पैदा करने वाला है। वास्तव में यहां कोई किला नहीं है। केवल तीन घर हैं असिस्टेंट सुपरिंटेन्डेन्ट, असिस्टेन्ट कमान्डर और डाक्टर के लिये। एक उम्दा सा छोटा अस्पताल, मिलिटरी पुलिस के लिये झोपड़ियां, क्लर्कों और असिस्टेन्ट सर्जनों के लिये घर एक डाक बंगला, एक कचहरी, एक डाकखाना और आस पास दो तीन गांव हैं जिनमें शान और कछिन लोग स्थाई रूप से रहते हैं। यद्यपि डाक ले जाने वाले बैल यहां मिचीना से

हफ्ते में एक बार चिट्ठी कागज़ छोटे पारसल लेकर आते हैं किन्तु भारी सामान साल में एक ही बार आते हैं। प्रायः नवम्बर के मध्य में। इसका मतलब यह हुआ कि आप मांस, तरकारी और सोडावाटर को छोड़कर खाने पीने का सारा सामान साल भर के लिये एक बार ही मगा लें। उस आदमी की तकदीर खराब जिसने साल भर के खर्च के सामान का अन्दाज़ कम लगाया। तब तो वह रोता, खीझता और दाँत बजाता बैठा रहे। 'स्टोर' इकट्ठा करने का मामला सचमुच मुसीबत देता है किन्तु दूसरी तरफ मछली का शिकार और जानवरों का शिकार, इस कमी को दोनों मिल कर पूरा कर देते हैं यहां से आगे चलने के लिये नागमंग तक के लिये कुली करना पड़ता है। नागमंग यहां से उत्तर में चार दिन का रास्ता है। यहाँ पर रुपये चाँदी के बदलने पड़ते हैं जो चीन के डालर की तरह सारे तिब्बत में चलते हैं। यहीं पर चावल, दाल, आटा, आलू वगैरह भी इकट्ठा खरीद लेना होता है क्योंकि फोर्ट हर्ट से तिब्बत के पहले गाँव शिकथंग तक कोई भी सामान नहीं मिलता है।

साल्विन-दर्शन

यहाँ से काचिन, लिस्स और खानंग लोग सामान ले कर चलते हैं जो प्रायः साठ पौंड आसानी से ले जा सकते हैं। जुये की तरह कंधे और गर्दन पर लकड़ी का एक डंडा रख कर उसमें बाँस के पोलों से रस्सी बाँध कर सामान लटकाते हैं। उत्तरी ब्रम्हा ही एक ऐसा भाग है जहाँ के कुली कंधे पर लकड़ी के जुये का प्रयोग करते हैं. भारतवर्ष में प्रायः सभी कुली चमड़े या रस्सी का बंधन काम में लाते हैं और तिब्बत में केवल चमड़े की रस्सी को दोनों कंधों के किनारे बाँध लेते हैं। नाम तमाई प्रदेश के खानंग उतने ही सच्चे है जितने शान्त स्वभाव वाले इसलिये सामान की रखवाली का विशेष प्रबन्ध नहीं करना पड़ता है। इस रास्ते में लगभग ७५ से अधिक लोगों के कारवाँ को इस रास्ते पर सामान ले चलने में बड़ी तकलीफ हो सकती है।

फोर्ट हर्ट से नागमंग के बीच में चार मंजिले करनी पड़ती है और प्रायः सारा रास्ता जङ्गल होकर है। पास में टिसंग नदी बहती है। लम्बे पैर वाले बन्दर लँगर और माकेक हमारे साथ चल रहे थे। हमारे कारवाँ के कभी पीछे कभी आगे के पेड़

की शाखाओं पर रास्ते के ऊपर वे इधर-उधर आते जाते थे अथवा बैठ जाते और मुंह बनाते थे। यहां बहुत जंगली बटेर भी हैं। कभी कभी लीच भी मिल जाते हैं। ये एक तरह के कीड़े होते हैं जो खून चूसने के काम आते हैं। रास्ता लगभग २ गज़ चौड़ा है और बहुत अच्छा। चलने में कभी भी किनारे की घास और भाड़ियों की रगड़ नहीं खानी पड़ती है। कभी कभी खरोंचे लग भी जाते हैं तो कुछ विशेष परेशानी नहीं होती। असली खतरा तो है इन तीनों से "हार्सफ्लाई" "ब्लिस्टर फ्लाई" और "बी"। ब्लिस्टर फ़्लाई प्रायः १ इंच लम्बी होती है और मनुष्य के खून को विशेष पसंद करती हैं। काटते समय उनसे बहुत दर्द नहीं होता और प्रायः पता ही नहीं चलता किन्तु बाद में छोटे छोटे लाल फफोले निकल आते हैं जो बहुत दर्द पैदा करते हैं। अवश्य ही, दो, तीन दर्जन यदि टूट पड़े तो आफत ढा दें। "बी" मक्खियां ही वास्तव में मुसीबत की चीज थीं। वे पसीने के नमक को चाटने के लिये या तो कमीज़ में इधर उधर घुस जाती हैं और कपड़ों पर बड़े चाव से बैठ कर चाटती हैं और यदि

हटाने का यत्न करें तो काटती भी हैं। सड़क पर तो प्रायः "हार्स फलाई" ही तंग करती है किन्तु आराम घर में सुस्त फर्श पर बैठे रहने पर बिजुस्टर फलाई और मक्खियों की बन पड़ती है। यहाँ तक मुसीबत होती है कि गर्मी हो या न हो पहुँचते ही आग बनानी पड़ती है। जिसके धुएँ से वे नहीं आतीं। धुआंदार आग बनाते तक सिगरेट पीते हुये धूप में रहे तब कहीं जाकर पाजामा पहिन कर मक्खियों से जान बचावें।

फोर्टहर्ट-मिटक्रिनी रोड के उन सुन्दर शानदार घरों के बाद में ये आराम घर इस भाग में बहुत दुखद होते हैं। घर छोटे और पुराने ढंग के बने है। उनमें एक बिस्तर दार कमरा, पीछे एक स्नान करने का कमरा एक बरामदा और बिस्तर रखने के लिये डोरी के अतिरिक्त कोई और फर्नीचर नहीं रहता है। सीढ़ियों के स्थान पर इनमें एक टेढ़ा ऊँचा लकड़ी का लट्ठा होता है जो बाहर से चारपाई तक होता है। स्नान भी जैसा चाहिये यहां स्वप्न ही समझिये। स्नान में बड़ी असुविधा पड़ती है और कभी भी आराम से बढ़िया स्नान होता ही नहीं। अगर यहाँ ये घर हैं भी तो

उसका कारण यह है कि उस रास्ते से असिस्टेन्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट साल में एक बार जांच करने जाता है और फिर जंगलों में बांस इतना बेकार पड़ा है कि बिना जरूरत भी अगर ये घर बनें तो बहुत सस्ते पड़ते हैं। उन्हें मरम्मत के लिये भी कुछ अधिक खर्च नहीं पड़ता है। फार्ट हर्ट से पहली यात्रा ग्यारह मील को है। मैदान के रास्ते होकर खाँन किड पहुंचते हैं। अन्त में मलीखा नदी पार करना पड़ता है। यह नदी लगभग पचास गज़ चौड़ी है और धारा बहुत तेज़ नहीं है। यहाँ पर तम्बाकू की खेती होती है जो आराम घरों में सुखाई जाती है।

नेपाली लोग दो बातों पर बहुत विश्वास करते हैं। एक तो यह कि यदि साँप रास्ते को दाहिने तरफ से पार कर जाता है तो वह काटता नहीं। यदि बाईं ओर से रास्ता काट दे तो तय है कि वह ज़रूर काटेगा। दूसरे यह की साँप अपनी नुकीली जीभ से डंक मारता है और आँखों से ज़हर रगड़ देता है। यहाँ के निवासी जब यह जान गये कि छिपकली और साँप यात्री लोग चाहते हैं तो आय का साधन जान कर

सात्विन-दर्शन

प्रतिदिन तरह तरह के ज़िन्दा नमूने लाते हैं जो बहुधा घायल होते हैं। एशिया में ज़हरीली छिपकली नहीं होती इसलिये उन्हें हाथ से पकड़ा जा सकता है लेकिन साँपों को एक छड़ी में फन्दा बांध कर गर्दन के पास पकड़ते हैं। सांप पकड़ने का सबसे अच्छी मौसम मानसून प्रारम्भ अन्त होते समय है। यहाँ से कुली फुरसत पाकर प्रायः सीधे फोर्ट हर्ट लौटे जाते हैं। नागमङ्गा एक बड़ा सा गाँव है जिसकी जनसंख्या सौ के करीब है किन्तु बहुत से आदमी गाँव में मक्खियों के कारण नहीं रहते हैं और अपना अधिक समय पहाड़ियों पर जानवरों और बकरियों को चराने में बिताते हैं। नाम टिसंग नदी के एक दम बायें किनारे पर पन्द्रह बीस झोपड़ियाँ बनी हुई हैं। नदी इतनी शान्ति से बहती है मानो कोई झील हो। दिन भर तर बालू का किनारा सैकड़ों प्यारी तितलियों से ढँका रहता है।

यहां लोग मुर्दे को ज़मीन से गाड़कर चारों ओर कोठेदार चारदीवारी सुरक्षा के लिये बना कर ऊपर छप्पर छा देते हैं। एक किनारे बहुत सी बन्दर की

खोपड़ियाँ और एक जङ्गली सुअर की खोपड़ी लटका देते हैं। नागमङ्ग और नामरमाई के बीच में तीन पहाड़ियां पड़ती हैं। पहली पहाड़ी के बाद गोल टूरप पड़ता है। यहां एक हज़ार फीट से भी अधिक ऊँचा चढ़ना पड़ता है। चढ़ाई बहुत ढालू है। गांव से यहां तक की दूरी से भी अधिक उतरना पड़ता है। चोटी पर चढ़ कर देखने से मालूम होता है कि सामने पूर्व की ओर पाँच अलग अलग पहाड़ियाँ लगातार चली गई हैं जो एक के बाद दूसरी उससे ऊँची है। उनमें से चार जंगलों से खूब ढकी हैं। पाँचवीं नङ्गी और बर्फ से ढकी हैं। यह बहुत संभव है कि "तेरान-साल्विन-डिवाइड" है। इस दृश्य के ठीक मध्य में दो पहाड़ियों के बीच में एक गहरी घाटी में एक झोपड़ी है। यह निर्जनता का सच्चा नमूना है।

गोल टूरप एक पतली घाटी में तीन धाराओं के के संगम पर बसा है। इस गांव से आराम घर एक मील या कुछ अधिक है। अगर यह आराम घर अच्छी दशा में रहे तो इसमें रहना बहुत दिलचस्प हो लेकिन बांस की खराब से खराब झोपड़ी अगर बन सकती है

तो वह यही है। आगे चलने के लिये पहाड़ियों का ढाल सूखा रहे तो ठीक है नहीं तो करारे ढालों पर बोझ लेकर आदमी के लिये चलना असम्भव है। यहां से नामरमाई दो दिन का रास्ता है। अन्तिम पहाड़ी पर से तीन हजार फुट की ऊँचाई से उतरने पर नामरमाई मिलता है। नदी पीले हरे रंग की है जिसे पार करने के लिये साठ गज़ लम्बा पुल बना है। पुल बहुत ही अच्छा बना है। इतना मज़बूत है कि उस पर होकर जानवर पार कर सकते हैं पुल से कुल दो सौ गज़ और पंगनामडिन गाँव से लगभग आधी मील की दूरी पर एक आराम घर है। यहाँ फिर कुली बदलना पड़ता है। यात्रा के प्रारम्भ में शानदार घर रहने के लिये मिलते हैं और ताज़ा माँस और तरकारी खाने को। फोर्ट हर्ट और पंगनामडिन के बीच में घर उससे कम अच्छे हैं और खाने को गिने गिनाये अंडे और मुर्गियाँ ही। नाम तमाई घाटी में तो अपने साथ लाये हुये सामान पर ही दिन काटना पड़ता है और रहने का प्रबन्ध बहुत खराब होता है। जैसे जैसे घाटी में आगे बढ़ते चलते हैं वैसे वैसे घर भी छोटे होते जाते हैं।

घर के नाम पर एक छोटा सा कमरा होता है। इसलिये बाहर 'टेंट' में रहना पड़ता है जिसमें छोटी कोठरी से भी ज्यादा तकलीफ होती है। यहाँ के निवासी की झोपड़ी के वार्षिक कर के लिये एक रुपया काफी होता है। वर्षा भारी तूफान के रूप में होती है। लम्बी लम्बी घासें और बनाना के पेड़ होते हैं। रात में जुगनू भरे रहते हैं जो छोटे से हरे पुच्छल तारे की तरह दिखाई पड़ते हैं। मेंढक पानी बरसने पर चारों तरफ टर्र टर्र मचा देते हैं। यह दृश्य अपने ढङ्ग का अनोखा ही होता है। यह स्थान तिब्बत से केवल ग्यारह मंजिल दक्षिण है।



दूसरा अध्याय

नाम रमाई घाटी में नदी के किनारे तक बहुत ढालू किनारे हैं जो ऊपर से लेकर नीचे तक अधिकांश भाग में घने जंगलों से ढके हैं। जङ्गल इतने घने हैं कि एक बार रास्ते से भटक कर आगे बढ़ना बहुत कठिनता से संभव है। पंगनामडिम के ऊपर एक अच्छी सड़क है जो चार पांच फुट चौड़ी है जो कहीं समतल और कहीं ऊंची है। कहीं तो सड़क जङ्गल में से होकर जाती है और कभी उसके किनारे साफ की हुई जमीन जिसमें मक्का पहाड़ी चावल, तम्बाकू या गेहूँ लगे हैं। यह साफ की हुई जमीन प्रायः किसी गांव के पास होती है। किन्तु गांव अधिकतर रास्ते से दूर जङ्गलों से ढकी पहाड़ियों पर बसे होते हैं। ये गांव गुलामों का व्यापार करने वालों के प्रति सम्मान दिखाने के लिये बने हैं जो हर साल सरदी के मौसम में चीन से तिब्बत आते थे और जो समय समय पर शायद अब भी आते हैं। दिन निकलते ही यहां विशेष गर्मी न भी होते हुये पसीने की धारा देह से बह निकलती है, किन्तु सूरज जब पहाड़ी पर चढ़ आता है तो सारी पहाड़ी भाप से भर सी जाती है।

यहां रास्ते में दरुस लोग मिलते हैं जो चुस्त, छोटे और सीमियन लोगों की तरह होते हैं। ये कपड़ा नहीं पहनते और इनकी देह से बदबू मिलती है। बाल काले घुंघरालेदार होते हैं। सात सात फुट तक की लम्बाई का भाला साथ में ले कर चलते हैं और एशिया के इस भाग की अन्य जातियों की तरह कमर

में भारी और चौकोर नोक का कृपाण लटका लेते हैं। पहले पहल ये कुछ शर्मीले होते हैं लेकिन स्वभाव से मिलनसार और बड़बोले होते हैं। कोई बात हुई नहीं कि दिल खोलकर इतना हँसते हैं मानो हँसी का फव्वारा छूट पड़ता है। नाम रमाई के आगे कोई मंजिल आठ या नौ मील से अधिक लम्बी नहीं होती इसलिये चलने के पहले दवा-दारू करने के लिये बहुत समय मिल जाता है। तीन दिन चलने के बाद प्लाप्लांडम स्थान पर कुली फिर बदले जाते हैं। यह गांव आठ झोपड़ियों का एक समूह है जहां साफ की हुई जमीन में मक्का अधिकता से पैदा होता है। खेतों से चिड़ियों के उड़ाने में एक बहुत अनोखा तरीका काम में लाया जाता है। गांव के केन्द्र के पास के खेत तक डोरी बांध कर उसमें बांस के टुकड़े लटका कर पेड़ की डालों पर डाल देते हैं। वहां से अलग अलग बांटकर दर्जनों की संख्या में दूसरे खेतों तक पहुँचाते हैं। बिना घर के बाहर निकले हुये वे लोग इस प्रकार बंदरों और चिड़ियों को खेतों से भगाते हैं। खानगी लोगों को सुस्ती नहीं, बल्कि कहना चाहिये उन्हें इतनी फुरसत का समय नहीं मिलता कि वे खेतों पर बैठ कर दिन भर चिड़ियां उड़ाया करें। उनका जीवन बहुत कठिन है। सुअर, बन्दरों और हिरनों से बचाने के लिये खेत घर के पास ही होना चाहिये। इसलिये इतनी ही जमीन पर खेती होती है कि फसल अच्छी होने पर निवासियों का का काम सरलता से चल जाता है। इस कारण यहां शिकार अधिक किया जाता है, फलतः बड़े जानवर जैसे, विसन, सैम्बर और भालू उस बड़े भारी जंगल में भी नहीं रहते हैं। लेकिन

छोटे जानवर जैसे भूंकने वाले हिरन, लैंगर, साकेक, और जङ्गली सुअर अब भी पाए जाते हैं जो सदा खेतों को उजाड़ा करते हैं। तेंदुए भी प्रायः अधिकता से यहां रहते हैं जो बेचारे किसान के छोटे से जानवरों के गल्ले पर उसी प्रकार धावा मारते हैं जैसे जङ्गल में अन्य जानवरों पर।

प्लाप्लांडम से पांच मील आगे बढ़ने पर तिब्बत के सीमा-प्रान्त के वर्फीले पहाड़ दिखाई देने लगते हैं। यहां से वे पहाड़ लगभग चालीस मील दूर हैं। यहां से यह तो निश्चित नहीं कह सकते कि बर्फ कितने नीचे तक जमी है किन्तु अनुमान होता है कि १२००० फिट या इससे भी नीचे तक बर्फ पड़ी हुई है। खालिंग लोगों के पास बूट नहीं होता और न वे सर्दी के ही आदी होते हैं, इस कारण दर्रे को पार करना कठिन होता है। नाम रमाई घाटी को दाहिनी तरफ से पार करने के लिये एक पुल है जो सत्तर गज़ लम्बा है। इस पुल की दशा सन् १९३२ में बहुत अच्छी थी जब कि तीन या चार आदमी तक उस पर होकर आसानी से जा सकते थे परन्तु बहुत गिरी हालत में है। आगे चल कर घाटी ढालू और सकरी होती गई है। नदी भी इतना तेज बहती है कि पानी पर फेन निकलता रहता है। कुहरा बीस फिट तक मोटी तट में पड़ता है जिससे गरज कर बहती हुई नदी का दृश्य सुन्दर दिखाई पड़ता है। रास्ते के अधिक भाग में दोनों ओर की जमीन साफ कर ली गई है। यहां कुछ झाड़ियां या लम्बे रीड लगा दिये गये हैं, फिर भी स्थान बहुत साफ खुला है।

दूसरे दिन अन्तिम आराम-घर मिलता है। अधिकतर जङ्गल

से यात्रा करने पर लगभग ९ मील पर टाजुंगडम नाम स्थान पर यह आराम-घर है। एक बिचित्रता यहां देखने को मिलती है कि यहां के निवासी छोटे रास्ते को बहुत पसन्द करते हैं। उदाहरण के लिये एक स्थान पर उन्होंने एक बहुत सुन्दर रास्ते को पचास गज़ तक काट कर एक बलुई चट्टान पर ले गये हैं जिस पर पैर जमाने के लिये छोटे छोटे गड्ढे खोद लिये हैं। कुली भी आसान रास्ता छोड़ कर बोझ लिये हुये भी उसी रास्ते को पसन्द करते हैं। आडंग वांग और सीगंखू के संगम से दो सौ गज़ नीचे एक छोटे से घास के मैदान में नदी के दाहिने किनारे पर टाजंगडम बसा हुआ है। आराम घर बहुत छोटा है–शायद १२ फिट लम्बा और दस फिट चौड़ा। कुछ गज की दूरी पर भोजनालय हैं जो इस आराम घर से भी गई-गुजरी हालत में है। यहां के निवासी बहुत आश्चर्य और लालच से रसोई घर के दरवाजे पर दो चार के ग्रुप में बैठ जाते हैं जैसे किसी पुरानी तश्तरी को बाहर फेकते ही उस पर टूट पड़ेंगे। आडंग की घाटी और सीगंखू में बसने वाले तिब्बती लोगों से यहां की बहुत सी औरतों ने तिब्बत के फैसन को नकल कर लिया है। वे एगी तक लटकती हुई सूती "स्कर्ट, लम्बी बांह का "जैकेट" जो अच्छी तरह कमर तक रहता है, पहने रहती हैं। वे बालों को लम्बा रखना पसन्द करती हैं और उन्हें सिर पर जूड़े की तरह बांधती हैं। कुछ पुरुष लोग चीनी ढङ्ग के जैकेट और पाजामे पहनते हैं। बड़े दुःख की बात है उनका अपना देश का पहनावा ही उनके देह पर भला जँचता है और देश को जलवायु के अनुसार ठीक भी वे दूसरे की नकल करते

हैं। साधारणतया यहां के खानंग लोग ४"×९" का एक जाम और मोटा सा घर का बुना हुआ सूत का कपड़ा, जो कम्बल के बराबर होता है, पहनते हैं। उस मोटे कपड़े को वे पीठ पर डाल कर कन्धे पर से कूल्हे तक लटका कर चारों खूंट को सोने पर जोड़ देते हैं। कमर के चारों तरफ एक कपड़े का पतला सा टुकड़ा लगाकर उसे ठीक बनाये रखते हैं। बाई ओर एक थैला लटकाये रहते हैं जो प्रायः 'गिबन' या "लैंगर" की खाल का बना होता है। सीने के आर पार एक तरकस लटकता रहता है। वे घर से बाहर निकलने पर एक मजबूत धनुष या कभी कभी एक लम्बा भाला लेकर चलते हैं। औरतें सूती कपड़े को कमर के चारों तरफ लपेट कर घुटने तक लटका देती हैं एक दूसरा कपड़ा कन्धे पर डाल कर एक हाथ के नीचे निकाल कर पीठ पर फेंक देती हैं और दूसरे कन्धे पर बांध देती हैं। इस प्रकार दोनों कन्धे ढक जाते हैं। गले में एक बटन या दाने का माला पहनती हैं और कमर में एक सुन्दर करधनी जो बांस की बनी होती है। पुरुष और स्त्री दोनों के घने; बड़े और चारों तरफ कटे हुये बाल होते हैं। वे लोग बहुत सुन्दर, सीधे, मिलनसार, और आज्ञाकारी हैं, सचमुच उनके साथ व्यवहार में बड़ा आनन्द आता है।

टालंगडम में कुली बदले जाते हैं। यहां से डिफुक ला पार जाना होता है जहां से शकघंग नौ मञ्जिल पर है। डिफुक ला १४२८० फिट ऊँचा है जो मई के महीने में भी बरफ की मोटी मोटी तहों से ढका रहता है। यहां के खानङ्ग लोग अपने को टालंग कहते हैं।

देश दर्शन

ये लोग टमाई की घाटी में पहले के खानंग लोगों से अधिक साफ और बलवान होते हैं। सींगखू की घाटी में तिब्बत के लोग चार स्थानों पर बसे हैं जो सब मिल कर "हइटा" कहलाते हैं। इनमें सब से बड़ा स्थान मेटिंग है। तिब्बत में धर्म नीति के कारण कोई आदमी बन्दूक वगैरह लेकर नहीं चल सकता। बात यह है कि वहाँ धर्म में शिकार करना मना है। यहां आदमी हथियार लेकर उतना सुरक्षित नहीं रहता जितना बिना हथियार के। टाजंगडम से आगे रास्ता बहुत खराब है। दो दिन तक घने जंगलों में होकर चलना पड़ता है। चट्टानों पर चढ़ना उतरना पड़ता है और नदी की पेटी में कगारों को पार करना पड़ता है। कुलियों को बहुत परिश्रम और कठिनाई पड़ती है। दिन भर में पांच मील ही तय किया जा सकता है। सींगखू को पार करने के लिये आडंग के संगम के थोड़ा ऊपर ही पुल बना हुआ है। नदी केवल १८ या २० गज चौड़ी है लेकिन डिफुकला से लेकर नाम टमाई तक सारे रास्ते भर एक तेज धार में गिरती हुई बहती है। यहाँ सैकड़ों वालू की मक्खियां टूट पड़ती हैं मानों जिन्दा निगल जायेंगी। जैसा कि उनके नाम ही से प्रकट होता है ये बालू के कण से बहुत अधिक बड़ी नहीं होती लेकिन छोटी होते हुये भी जो परेशानी ये पैदा करती हैं वह बहुत भीषण होती हैं। धुयेंदार आग से ये मक्खियां भागती हैं। यहां के लोग अकेले ही धनुष से रीछ या भालू का शिकार कर लेते हैं। कुली लोग यहां अपने सारे कपड़े एक-दो को छोड़ कर उतार डालते हैं।

सालिवन-दर्शन

सींगखू कुछ दूर चलने पर दो हजार फिट ऊँचे पहाड़ मिलते हैं। चोटी पर कुछ पाइन के वृक्ष हैं जिससे मालूम होता है कि जल्द ही साफ प्रदेश आजावेगा। रास्ता नदी के बहुत ऊंचे पर कहीं समतल कहीं खड्डदार है और एक मील बाद ६५०० फिट की ऊचाई पर मेटिंग बसा हुआ है। यह स्थान सुखी और छोटा सा गांव है जहां गेहूँ और जौ की बड़ी अच्छी फसल होती है। बीस तीस के लगभग पहाड़ी जानवर भी हैं यहां के घर सुन्दर हैं जो एक दम लकड़ी के बने हुये हैं और खानिगर लोगों के वरमों के बने हुये वेढङ्ग घरों से विभिन्न हैं। किसी यात्री के पहुँचने पर सारा गांव संध्या के समय डाक्टरी कराने के लिये उमड़ पड़ता है। किसी को दांत का दर्द है, कोई पेचिश से परेशान है और कोई कीड़ों का सताया हुआ है। कुलियों के पास बूट नहीं होता और कपड़े भी बहुत कम रहते हैं। इससे आगे जाने में वे बहुत हिचकिचाते हैं क्यों कि यहां से बर्फ की चढ़ाई शुरू हो जाती है। मेटिंग और शिकयांग के बीच की सात मञ्जिलों में न कोई गांव पड़ता है और न भोजन ही मिलने का प्रबन्ध रहता है। अतः कुछ और कुली सामान ले चलने के लिये साथ लेना पड़ते हैं रास्ते में लीच नामक कीड़े बहुत परेशानी पैदा करते हैं जिनकी दवा केवल नमक है। अपर ब्रह्मा में नमक नहीं मिलता है इस कारण इन कीड़ों को बरबाद करने के लिये साथ में नमक ले चलना पड़ता है।

मेटिंग से साकांगडम चरागाह पांच मील पर है लेकिन रास्ता नहीं है। तीन हजार फिट से भी अधिक चढ़ाई पड़ती

है, वह भी घने जंगलों और झाड़ियों से होकर। यहां रास्ता एक तालाब के किनारे से जाता है और संकरा तथा कीचड़ से भरा है। तालाब में बांस के पेड़ गिरे हुये हैं। और उन पर काई जमी हुई है। पानी सड़ा हुआ है जिससे भयंकर दुर्गन्धि निकलती है यह बहुत कष्ट दायक स्थान है क्योंकि लीच कीड़े भी इस नम्र स्थान पर नहीं रह सकते हैं। वैसे तो वे जंगल भर में इतने भरे पड़े है कि सारे बरसात तक सभी जानवरों को बाहर भगा सकते हैं। जानवर भाग कर या तो १०००० फिट की ऊँचाई पर चीड़ के जङ्गल में चले जाते हैं या सीधे पेड़-सीमा के ऊपर। चीड़ के जङ्गल लीच कीड़ों की अन्तिम सीमा है और उनके ऊपर सैंक्चुअरी है।

तिब्बत में डिकुकला के दक्षिण में लंगफुक अंतिम कैम्प पड़ता है। घाटी के किनारे बहुत सुन्दर दृश्य उपस्थित करते हैं जो तरह तरह के रंग से सजीव ज्ञात होते हैं। हर तरफ रोडोडेण्ड्रम के पेड़ हैं जो लाल, गुलाबी, बसन्ती और सफेद रंग के खिले हुये फूलों से लदे हुये हैं। आगे रास्ते में लगभग १२००० फिट की ऊँचाई पर इबिस-बिल के जोड़े मिलते हैं। पहले ये ब्रह्मा में बिल्कुल नहीं होते थे इसको पकड़ना बहुत कठिन होता है। १२००० फिट की ऊँचाई पर लंगफुक में मेटिंग के जानवर चरने आते हैं, ताकि वे लीच और अन्य भयंकर मक्खियों से बच सकें। यहां दो झोपड़ी हैं जिनकी दीवारें पत्थर की बनी हैं और छतें चीड़ के खम्भों से पटी हुई हैं। यहां पर बर्फ पड़ती है किन्तु कुछ मील नीचे कुछ गरम है जहां कुली लोग दर्रे के बर्फ से ढके रहने पर चले जाते हैं।

सालिन-दर्शन

तालंग लोग कैम्प तथा चीड़ के तख्तों का चबूतरा बना कर उसी पर सोते हैं। झुण्डों में वे उसी पर बैठ जाते हैं और खाते तथा बात-चीत करते हैं ये लोग अपने धनुष से टेकिन का शिकार करते हैं जो ढालों पर पाये जाते हैं। ये जानवर दर्रे के पास अधिक संख्या में रहते हैं। देखने में बड़े डरपोक किंतु वास्तव के ये बड़े चुस्त और चालाक होते हैं। कुली लोग चालाकी से पैसा बचाने के लिये शिकार के भरोसे पर आगे बढ़ते हैं, तो उन्हें प्रायः निराश भी होना पड़ता है।

तृतीय अध्याय

लंगफुक से दिफुकला तक रास्ता बहुत सीधा है। कम्प से चार फलाँग तक वर्फ पड़ती है जो धीरे धीरे बढ़ती जाती है, किंतु कुली लोग नंगे पैर ही बिना किसी शिकायत के बढ़ते चलते हैं। दर्रा १४२८० फिट ऊँचा है जिस पर यात्री लोग सरलता से चढ़ सकते हैं। चोटी पर बर्फ हवा से कट कट कड़ी पर्तों में जमी हुई है। दर्रे के उत्तरी किनारे से एक बहुत तेज ढाल है जो हजार फुट नीचे एक छोटी झील तक गया है। यह झील गर्मी में पुखराज की तरह निर्मल और हरे रंग की रहती है बर्फ जमी रहने पर इस झील पर होकर तालंग लोग डीचू की ढालदार और तंग घाटी की ओर चीड़ के बनों की ओर जाते हैं जहां उनके दर्द करते हुये पैरों को बर्फ से छुटकारा मिलता है।

देश दर्शन

ब्रह्मा और तिब्बत की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा दिफुक ला से बहुत उत्तर और डीचू तथा लोहित नदियों के सङ्गम के थोड़ा ऊपर है। किन्तु इस प्रकार की कल्पित रेखा का क्या उपयोग है जब कि वहां कोई इसका नाम तक नहीं जानता। वैसे तो कार्य रूप में यह सीमा दिफुक ला से पूरब की ओर पहाड़ी के किनारे किनारे और पश्चिम की तरफ लोहित घाटी में स्थित तिनाई के कुछ दक्षिण तक। फिर इसी को तिब्बत निवासी, खानंग और मिशमी लोग सामान से मानते भी हैं, जिन्हें इस समय इमसे प्रयोजन है। दर्रे की ऊँची चोटी पर चढ़कर देखने से सामने बर्फीले पहाड़ों की टुकड़ियां ही टुकड़ियां दीख पड़ती हैं। वैधानिक सीमा वैसी ही व्यर्थ प्रतीत होती है जैसी यहां के निवासियों को यहां से आगे कदम रखने पर तिब्बत में प्रवेश होता है। दर्रे के उत्तर की तरफ बर्फ चार फिट गहरी और नर्म है, जिसको कुली कठिनता से लुढ़कते हुये पार करते हैं। दिफुक ला से चार मील नीचे एक स्थान पर एक ओर चीड़ के जंगल हैं दूसरी ओर डीचू नदी, जहां से बर्फ एक मील या कुछ अधिक पीछे छूट जाती है। यहां कैम्प लगाने योग्य अच्छा स्थान है।

इस कैम्प से दस घंटे का लम्बा रास्ता तय करने पर डी चू नदी के दाहिने किनारे पर गर्म पानी के सोते हैं। रास्ता चीड़ के जंगलों और रोडोडेण्ड्रन की झाड़ियों के बीच से होकर जाता है। यहां कस्तूरी वाले हिरन के और जङ्गली सुअर के चिन्ह पाये जाते हैं। डीचू नदी इस कैम्प के ऊपर से होकर लोहित तक एक धारा में है जो केवल इतनी ही चौड़ी है कि एक

पेड़ आर पार गिर कर पुल का काम कर सकता है। तालंग लोग इस प्रकार नदी को पार कर जाते हैं, हां, कुछ कठिनाई अवश्य पड़ती जहां तक गर्म पानी के झरनों का सम्बन्ध है, वे छोटे और देखने में आकर्षक नहीं हैं। उनसे 'गंधक' की तेज गन्ध निकलती है। पानी इतना गर्म रहता है जैसे बहुत गर्म स्नान का पानी, लेकिन जुलाई और अगस्त में मीलों से 'टेकिन' इनमें पानी पीने आते हैं। तिब्बत के निवासी जैसा कि नियम है चाकू के स्थान पर केवल अंगुलियों से ही भोजन करते हैं।

रास्ते में मान चित्र बनाना असंभव है क्योंकि रास्ता चीड़ रोडोडेण्ड्रन, और वांस के घने जङ्गलों से होकर जाता है। जहां कहीं मौका भी मिलता है वहां घाटी के ढालों पर पेड़ों की घनी कतारों के अतिरिक्त कोई उपयुक्त वात मिलती ही नहीं ग्यारह घन्टे यात्रा करने पर आराम करने योग्य स्थान मिलता है। कुछ खाने योग्य जड़े यहां मिल जाती हैं खानंग लोग इन जड़ों की खोज में एकड़ों जमीन खोद डालते हैं और उसे उबाल कर खाते हैं। कच्ची जड़ों को खोदकर खाने से बीमारी पैदा हो जाती है। लेकिन आगे चलने पर कुछ समय में बीमारी अपने आप ठीक हो जाती है। अब चौड़ी और चौरस रीमा घाटी मिलता है, जो डीचू घाटी के बाद चूल्हे की तरह गरम लगती है।

रांगम चू नदी को आगे चलकर मिशमी लोग लोहित के नाम से पुकारते हैं। शिक घंग से चार मील दक्षिण की ओर एक पहाड़ी पर लैटिंग नामक एक छोटा सा गांव है। शिकघंग

लगभग दो मील पर एक बड़ी नदी है, जिस पर केवल एक रस्सी का साधारण पुल है। अंग्रेज के विरुद्ध तहां तिब्बत की प्रथा के अनुसार लोग घोड़े आदि की सवारी को खेल नहीं समझते, बल्कि केवल पैदल चलने के अतिरिक्त एक दूसरे प्रकार से चलने का साधन मात्र। अमीर लोग यहां जब टट्टू पर सवार हो जाते हैं तो रास्ते के सारे झंझटों से छुटकारा पा जाते हैं और एक आदमी आगे आगे चलता है। शिकघंग बालू की एक पहाड़ी की चोटी पर बसा है। तिब्बत की इस धुर दक्षिण-पूर्वी भाग में सब घर चीड़ की लकड़ी के बनाये जाते हैं और शिकघंग के घरों को छोड़ कर सभी घर वर्षा की अधिकता के कारण आठ या दस फिट ऊँचे चबूतरे पर बनाये जाते हैं। नीचे की जमीन पर जानवर और सुअर रहते हैं। फिर भी, शिकघंग कोई साधारण गांव नहीं है। जैसा कि इसके नाम से प्रकट होता है यह एक देहाती शहर है और जिले का गवर्नर जब अपने सांगचो जांग के सदर स्थान से टैक्स वसूल करने आता है तो यहीं पर सर्दी के समय रहता है। वह किसी घर में जनवरी से जून तक रहता है, बाकी घर उसके 'स्टाफ' के लोगों से खचाखच भरे रहते हैं। शिकघंग में सभी घर जमीन से इतने ऊंचे बने हैं कि वे सूखे रह सकें। घर बहुत गिरी दशा में रहते हैं, फिर जब इसे गांव समझा जाता है, और गवर्नर के न रहने पर प्रायः निर्जन रहता है, तो यह कोई बड़ी बात नहीं है। फिर भी तालंग लोग इसकी विचित्रता देख कर आश्चर्य से मौन रह जाते हैं। वे घबड़ाई हुई भेड़ के झुंड की तरह घेर कर खड़े हो जाते हैं और आँख

फाड़े हुये घूरते हैं, और मुंह से एक शब्द भी नहीं निकलता है। उनकी कल्पना में ऐसे घर या कारीगरी कभी आई ही नहीं। यहां पर मक्खनदार चाय, चांग नामक जौ की शराब और चीनी मिले भात से स्वागत किया जाता है. वैसे तो चावल कूटा हुआ चावल, चब्रिक चाय, सोडा, बालबर और अंडे भी मिलते हैं। रात में लकड़ी के धुंये की महक चर्बी की गन्ध आती है।

यहां वर्षा होती है तो कई दिनों तक लगातार होती रहती है। ऊँचे होते हुये भी यदि कैम्प और घर डूबने लगते हैं। तो उनके चारों ओर गहरी नाली खोद कर, पानी से उन्हें बचाते हैं। नदी का रस्सी का पुल टूट जाता है, या पतला पड़ जाता है, तो फिर से दूसरा बनाने की आवश्यकता पड़ती है। नदी के किनारे से दूसरे किनारे तक लगभग सत्तर गज लम्बा पुल बनाना होता है। आधे दर्जन आदमी तीन दिन में इसको बना सकते हैं। बनाने का कुल खर्च कम से कम दस चांदी के 'ट्रांगक' लगते हैं जो एक शिलिंग और नौ पेंस के बराबर होते हैं। दक्षिण-पूर्वी तिब्बत में चौड़ी नदियों पर पुल प्रायः पाया जाता है, इस कारण यहां के निवासी नौ इंच का लकड़ी का एक पहिया बनाते हैं जो पाइप की तरह होता है। जब कि किसी नदी पार करना होता है वह इस पहिये को रस्सी पर रखता है और अपने को इससे चमड़े की डोरी से बांध देता है और जहां ढाल मिलता है तेजी से सरकता हुआ चला जाता है। जब ढाल नहीं रहता है तो वह हाथों हाथों अपने का खींचता हुआ पार करता है। इस पुल में सब से बड़ी असुविधा

यह पड़ती है कि एक छोटी सी टुकड़ी को भी नदी पार करने में दो तीन घंटे लग जाते हैं क्योंकि सामान को थोड़ा थोड़ा बांध कर एक एक करके पार करना होता है। एक बार पहिया पार जाता है, फिर वापस आता है, इसी प्रकार बार बार दोहराना पड़ता है। देश के धुर दक्षिण में बेंत और बांस से रस्सी का काम लिया जाता है क्योंकि उनसे अधिक खर्च नहीं पड़ता है। लेकिन और अधिक उत्तर में रस्सी का काम कमाये हुये चमड़े से लिया जाता है, जिसमें एक पुल में बीस पाउंड तक खर्च बैठ जाता है। फिर भी कोई बड़ा खर्च नहीं है; कारण यह है कि चमड़े के पुल बारह या पन्द्रह साल तक टिकाऊ होते हैं।

मोटापन का तिब्बत में बहुत आदर है। यहां अमीर आदमी मक्खन नमक और सोडा मिला कर चाय तैयार करते हैं जो उतनी ही स्वास्थ्य देती जितनी स्वादिष्ट होती है। तिब्बत के बड़े आदमी किसी प्रकार का व्यायाम नहीं करते हैं। वर्तमान समय में तिब्बत में जीवन और शासन की ठीक वही दशा है जो इंगलैण्ड में "मध्य-युग" में थी। उसके साथ समानता करने पर यहां के नियम कड़े नहीं हैं। यदि कोई आदमी किसी को मार डालता है तो उसे बन्दी बनाकर जमीन पर पेट के बल गिरा देते हैं और दो जल्लाद दोनों ओर से चमड़े के कोड़े से पचास कोड़े लगाते हैं। पूछने पर उचित उत्तर न पाने पर सौ कोड़े पूरे किये जाते हैं। अब भी ठीक न ज्ञात होने पर उसे बन्द कर देते हैं। दूसरे दिन दो सौ और तीसरे दिन तीन सौ कोड़े लगते हैं। जब कई दिन

तक नहीं पता चलता है तो उसे लाशा भेज दिया जाता है जहां उसका हांथ काट लिया जाता है। कोड़े मारने के दृष्य को देखने के लिये सारे अफसर, गांव के बड़े-बूढ़े और आस पास के सभी उम्र के स्त्री-पुरुष इकट्ठा होते हैं। इस प्रकार का भयंकर दन्ड कुछ अंश तक ठीक भी जंचता है क्योंकि इसी कारण किसी भी जिले में कोई अपराध नहीं होता है। हां, ग्रेट प्लेटू को छोड़ कर—कारण वहां डाकुओं के समूह फिरा करते हैं, लेकिन प्रायः वह सारा प्रदेश—शासन के अन्तर्गत नहीं है, इससे इसके साथ शेष देश की तुलना करना उचित नहीं है।

अपनी स्त्री के बिना यात्रा करना यहां के लोगों के लिये एक आश्चर्य और कौतूहल का विषय है। यदि इन्हें यह उत्तर मिले कि अकेले यात्रा में ही आनद आता है तो बहुत चकित से होते हैं। आवश्यकता हो तो ये यात्रा करने के लिये स्त्री देने का बचन देते हैं। जो कुछ ही समय तक अर्थात् यात्रा काल तक यात्री की पत्नी रूप में रहेगी।

चतुर्थ अध्याय

शिकघंग से शमडेन गोम्फा के लिये उत्तर की ओर तीन रास्ते हैं। एक तो जायुल नदी के ऊपर और दूसरा रांगटो चू नदी के ऊपर 'अटा कांग ला' के ऊपर से हो कर। तीसरा रास्ता 'जेपा' से है। वर्षा ऋतु में लोहित घाटी में से हो कर जाना असम्भव है। लोहित नदी को रस्सी पर पार करने पर 'रांगरो चू'

मिलती है। रास्ते में चीड़ के जंगल हैं जिनके बीच से हो कर यात्रा बड़ी सरलता से की जा सकती है। ।कुछ ही दूर 'ड्री' मिलता है। रांगरो घाटी में मिशमी स्त्री-पुरुष दोनों रहते हैं जिनकी देह से कई गज की दूरी से ही बहुत खराब दुर्गन्ध निकलती जो तिब्बत निवासियों की रुचि और अच्छी गन्ध से बिल्कुल ही भिन्न है। जाड़े में ये लोग यहां आ जाते हैं और टोकरियां बना कर जीवन निर्वाह करते हैं, किन्तु ऋतु के अन्त में अपनी फसलों को काटने के लिये चले जाते हैं। लोहित घाटी में जाड़े की ऋतु में रहना आनन्द दायक होता है किन्तु गर्मी में पूरी मौत है। मिशमी बेचारे जीवन निर्वाह के लियेयहां साल के सब से खराब समय को बिताने के लिये आते हैं। यहां यात्री के लिये कठिन समस्या होती है। एक दुभाषिया मिशमो का अनुवाद जयुली में करे, दूसरा जयुली को तिब्बती भाषा में करे, तब कहीं उसे हिन्दुस्तानी में अनुवाद करने की कहीं बात समझ में आवे।

रांगरो, जायुल घटी के कुछ भाग और शिकघंग के पास-पड़ोस के प्रदेश को मिलाकर जायूल कहते हैं, जिससे अंग्रेजी मान चित्रों पर 'जायुल' लिखने की प्रथा हो गई है। जायू का अर्थ है 'जाया का देश' अथवा वह देश जिसमें कभी कभी पेड़ों पर बड़े और चौड़े छोटे छोटे पेड़ बढ़ने लगते हैं यह एक बीमारी है। इसके पेड़ की लकड़ी बहुत सुन्दर होती है जिससे चाय के प्याले बनाये जाते हैं जिनकी कीमत पांच या छः पौंड तक होती है। ये जाया के पेड़ यहां बहुत ही कम मिलते हैं, हां, कुछ प्याले अवश्य मिल सकते हैं जो सचमुच

बहुत सुन्दर होते हैं फिर भी, मिलें या नहीं। ये इस भाग में और स्थानों की अपेक्षा अधिकता से पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त जायुल चावल और गेहूँ के लिये भी प्रसिद्ध है। यहां चावल सात हज़ार फिट की ऊँचाई पर बोया जाता है। यहां की अपेक्षा देश के शेष भागों में चावल बहुत मंहगा मिलता है।

रांगटो चू के बायें किनारे से तीन मील की दूरी पर ट्रांबां है। एक दर्जन सन्दूक यदि नदी के पार भेजना होता है तो लगभग दो घन्टे समय लग जाता है। ट्रांबा ६०५० फिट की ऊंचाई पर एक पठार पर एक सुन्दर स्थान है। यह पठार नदी से नौ सौ फिट ऊंचा है। पास ही में लाट्मा है, जो खाम के बड़े सूबे की राजधानी चामडो से आने वाले एक आदमी के अधिकार में हैं। तिब्बत की सरकार की ओर से यह स्थान उसे सेवाओं के बदले में मिला है। यहां की सरकार लगभग साठ और कई साल पहिले से धीरे धीरे इस नियय का पालन कर रही है कि सेवाओं के बदले में उस मनुष्य को स्थान दिया जावे। जायुल में धर्म जड़वाद से इतना घुल मिल गया है कि सरकार का धर्म से गहरा सम्बन्ध हो गया है। वह समय समय पर उचित आदमी को ज़मीन का दान देती है कि वहां वह गांव बसा कर बौद्ध धर्म के सच्चे स्वरूप की उन्नति सब साधनों से करे। यह ज़मीन 'टैक्स' और सर्विस से मुक्त कर दी जाती है। एक साधारण विचार यहां यह भी है जायुल लोगों में देश का इतना अधिक अच्छा खून है कि मिशमी, खानङ्ग, लिस्सू, चीनी, और आदिम बौनों का कुछ

अंश तक इनके वंशज होने की संभावना है। इसी प्रकार के अन्य स्थान मेडांग और पर्टसंग हैं, लेकिन उनके अधिकारी उन स्थानों से संतुष्ट नहीं हैं क्योंकि प्रायः अधिकांश तिब्बत के निवासियों को जायुल, खराब जलवायु वाला गर्म मौसम है। फिर जिन खुश्क गाटिओं में वे रहने के आदी हो जाते हैं, उसे छोड़ कर इस परिवर्तन के देश में कौन बसना पसन्द करता है ट्रामा में आने जाने के साधन बिल्कुल नहीं हैं।

नदी का किनारा छोड़ कर घने जङ्गल में घुसना पड़ता है, जहां पानी बरसने पर कीचड़ हो जाती है। यहां बरसते समय बादल बहुत नीचे आ जाते हैं जिससे यात्रा करते समय मानचित्र बनाना प्रायः बहुत कठिन होता है और दूर के दृश्य साफ कम दिखाई देते हैं। यहां नौ हजार फिट की ऊंचाई पर 'बालू की मक्खियां' हैं जो कैम्प में बहुत भयानक रूप से काटती हैं। पहाड़ों के इस तरफ लगभग १५०० फिट नीची तंग घाटियां हैं और दूसरी ओर घास के मैदान। यहां बर्फीली हवा तेजी से बहती है जिससे गर्म कपड़ा भी देह को गर्म नहीं रख सकता और आग जला कर सेंकना अनिवार्य हो जाता है। यहां रहने के लिये जगह बहुत कम है और टट्टूओं के चरने के लिये घास क्षार मैदान ही है। पांच छः सौ फिट नीचे कुछ छोटी छोटी लटकती हुई चट्टानें हैं जिनसे बर्फ से सुरक्षा हो सकती है। दर्रे से जो बर्फ गल कर बहती है वह अवश्य इन तंग घाटियों से ही होकर जाती है। मौसम पहले और भी खराब होता है। रास्ता बर्फीला है। आगे चलने पर जोगू ला

मिलता है जो १३७३० फिट की ऊंचाई पर स्थित है। चोटी पर चढ़ कर देखने से मालूम होता है कि सारी 'लेपा' घाटी पूर्ण रूप से कुहरे की वर्षा से भरी हुई है। नीचे उतरने के लिये बहुत धीरे धीरे चलना पड़ता है। दर्रे के एक हजार फिट नीचे उतरने पर सामने का दृश्य केवल तीन सौ गज तक दिखाई देता है, अतः मान चित्र नहीं बनाया जा सकता है। लेपा 'जोगू ला' से लगभग ४५०० फिट नीचे बसा है। यहां पैर, हांथ और सिर पर 'बालू की मक्खियां' बहुत भयानक आक्रमण करती है, विशेषकर पैरों को तो घायल-सा ही कर देती हैं।

लेपा बाहरी संसार के एक दम अलग है। दर्रा और बसंत की ऋतु में बर्फ से ढका रहता है। यहां के निवासी असभ्य हैं और वे विदेशियों से रुखी भाषा में क्रोध पूर्वक विवाद करते हैं। यहां के घर बहुत खराब और कष्ट दायक हैं जिनमें 'बालू की मक्खियां' भरी रहती हैं। अच्छे से अच्छा घर भी बहुत छोटा, बहुत गन्दा और खिड़की रहित होता है। खोज करने वाले विदेशी यात्रियों को देखकर यहां के गांव वाले ऐसे अश्चर्य से देखते हैं मानों लाट साहब आये हों—क्योंकि उनके पास सामान अधिक रहता है। कुछ दूर पर तीन सुन्दर पीले रंग के कुञ्ज हैं, जो वास्तव में अमूल्य निधियां हैं। इसी प्रकार के कुन्जों की खोज अपर ब्रह्मा में सन् १६३० में किंगडन वार्ड ने आडंग की घाटी में की थी। घाटी पूर्व की ओर चोटी पर चढ़ने पर जङ्गलों के ऊपर एक बहुत मनोहर बाग है। छोटे छोटे रोडोडेण्ड्रन के पेड़ों से घाटी के किनारे ढके हुये हैं।

गुलाबी, पीले, नीले, तूनी और सफेद रंग की बनस्पतियों से रास्ते ढके हुये हैं, और हर साफ जगह पर 'भीनीमहक वाले पीले पीले 'प्रिमुलस' गहरे नीले रंग के 'जेंशन' और सफेद रंग के 'एनीमन' के फूल मिलते हैं। अनेकों रंग के फूल खिले रहते हैं जिनकी शोभा प्रकृति में चार चांद लगाती है किन्तु उन्हीं को चित्रों में अंकित करने पर बड़ा भद्दा लगेगा।

लेपा के निवासियों को गांव छोड़कर बाहर जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। साल के आधे समय तक निकलना भी कठिन है क्योंकि 'जोगू ला' जनवरी के प्रारम्भ से लेकर जून के मध्य तक बर्फ से बन्द रहता है और लेपा चू नदी के किनारे होकर जायुल नदी तक कोई भी रास्ता नहीं है। गर्मी में लोग गंगटो से मक्खन के बदले में चीजें लाते हैं और 'सांगचों जांग' से लोग मक्खन और गेहूँ से व्यापार करने के लिये चाकू, हीरे जवाहरात और नमक लाते हैं यही सम्बन्ध अनजान विदेशियों से ये लोग रखते हैं, हां कभी कभी बाहर से कोई लड़की लाई जाती जिसके साथ लोग विवाह कर लेते हैं। जायुल में सभी गांवों की तरह जानवरों का शिकार करना साल भर का पेशा है। घाटी में काले भालू, ग्रोल, सीरो, कस्तूरी वाले हिरन, और मिलते हैं। तिब्बत के शेष आबाद भाग में शिकार की मनाही है, फिर भी यहां शिकार किया जाता है। जायुली लोग इतने स्वतन्त्र और साहसी होते हैं कि उनकी स्वतंत्रता को सीमित करना उनके जीवन को सीमित करना है, चाहे वह कानून हो या नहीं। देश के अन्य भाग के

किसान इतने स्वतंत्र विचार वाले नहीं हैं। लेपा सारे स्थान के लिये साल भर में मक्खन और जौ का कर देता है जो सात रुपये के बराबर होता है क्यों कि यहां के अधिकारियों ने इस स्थान को देखने का ध्यान ही नहीं दिया। वे समझते हैं कि यह एक जङ्गली स्थान है जहां आवश्यकता से अधिक पैदा नहीं होता है। जायुल में बाकी सब जगह पर घरों पर दो से दस रुपया सालाना कर लगता है, जो उसमें रहने वालों की संख्या उनकी संपत्ति पर निर्भर होता है। सारी जमीन राज्य की ओर से लगान पर दी गई हुई है।

याक और साधारण जानवरों से मिलता जुलता यहां एक जानवर डांस होता है, जो बोझा ढोने के काम में आता है। जायुल में मानचित्र बनाते हुये यात्रा करना बहुत कठिन है क्योंकि घने जङ्गलों के कारण कुछ दिखाई नहीं देता है। लेकिन 'लेपा से चलने पर नदी की धारा के विरुद्ध दिशा में प्रायः लम्बे साफ़ स्थान मिलते हैं, जो पानी से भरे होते हैं। पानी कुछ इन्चसे लेकर दो फिट तक होता है, इससे भी चित्र बनाने में कठिनाई पड़ती है। यहां से लगभग छः मील आगे बढ़ने पर घाटी लगभग चार फर्लाङ्ग चौड़ी हो गई है। यद्यपि दलदल यहां भी हैं किन्तु पहिले की भांति नम नहीं है, जिससे यहां बहुत से डांस और टट्टू मैदान में चरते हैं। धीरे धीरे जीवन सुखतर होता जाता है, यहां तक कि दो मील आगे कैम्प में उतनी मुसीबत नहीं रह जाती है। यहां दो सौ गज की ऊँचाई पर एक गर्म पानी का सोता है। यद्यपि जानवर इसका पानी पीते हैं, लेकिन आदमी इसे घाव धोने के काम में लाते हैं। यहां से

नौ मील तक रास्ता ठीक तो है लेकिन बांस के जङ्गलों से होकर गया है और अंत में एक मील तक घने चीड़ और रोडोडेण्ड्रन के बन हैं। बन के बाहर लगभग १०८ फिट की ऊँचाई पर एक छोटी सी झील है। लेपा चू नदी स्वच्छ और दूध के समान धार बहती है। चौथी मञ्जिल पर लगभग आठ मील लम्बा और १२०० फिट चौड़ा ग्लेशियर है। इस पर साधारण ढाल है, लेकिन धरातल बहुत चिकना है। जानवरों को यह मार्ग छोड़कर चूने के पत्थर की कगारों पर होकर जाना पड़ता है। इस ग्लेशियर को कोई कारवां एक दिन में नही पार कर सकता। इसे पार कर 'डुक ला' पर चढ़ना पड़ता है जो १३९९०० फिट ऊँचा है। इस पर छोटे छोटे रोडेडेण्ड्रन के पेड़ हैं। दर्रे के दोनों ओर छोटे छोटे लटकते हुये ग्लेशियर हैं, जिनसे स्पष्ट प्रकट होता है कि किसी समय यह सारा प्रदेश ग्लेशियर से भरा हुआ था। पहिले लेपा से चलने पर पांच मील तक बर्फ पड़ती है लेकिन कभी कभी वह बढ़कर छः मील तक हो जाती है।

डुक ला से तेज ढाल पर हो कर नीचे उतरने पर जायुल नदी दिखाई देती है। यहां मैदान में सांगचो जांग चरवाहे डोस चराते हैं। यहां ताजा दूध मिल सकता है लेकिन मक्खन बहुत गन्दा होता है। तीन हज़ार फिट ऊँचे पर बड़ी कठिनता से चढ़ कर देखने पर पता चलता है कि तेज़ हवा के झोंके से बर्फ की दीवारी बड़ी मज़बूती से दर्रे के सामने अड़ जाती है। ला सार १४९२० फ़िट ऊँची पैनी पहाड़ी में, एक चट्टान है जो ऊची चोटी पर दो गज से भी कम चौड़ी है और कई सौ गज तक

दोनों तरफ सपाट ढालू है। उत्तर की ओर लगभग २० फिट तक बर्फ लटकती है जिससे उस पर चढ़ना असम्भव है। इस लिये इसे चाकू और बर्फ को कुल्हाड़ी से काट कर घाटी में गिरा देने के सिवा दूसरा कोई चारा नहीं है। गेम पर से बोझ उतार कर उसे एक एक आदमी आगे आगे ले चलता है। आगे चलने को हमेशा यह भय बना रहता है कि कहीं उसका डोस उसके ऊपर न गिर पड़े। दो आदमी पीछे पीछे काठी में रस्सी बांध कर उसे खींचे हुये चलते हैं। समान को फिर बाद में हाथों हाथों लाना पड़ना है। इस प्रकार सकुशल पार हो जाने पर सचमुच सांगगो जांग पहुँचने पर अपार संतोष और हर्ष होता है। पेकिंग से आसाम की लम्बी यात्रा में सन् १९ ११ मेडोवा गोम्पा से कनल बेली इस स्थान पर आ चुके हैं और सन् १९ ३३ में शगडेन गोम्पा से किंगडन वार्ड ने भी इस स्थान की यात्रा की है।

ला सार से यहां तक का मार्ग एक ढालू संकरी घाटी में हो कर जाता है और अन्तिम पांच सौ गज तक सांगवो जांग बिल्कुल नहीं दिखाई देता है। यह कोई बड़ा स्थान नहीं है, केवल एक 'स्क्वायर' एक तिमंजिला जांग या किला और एक सौ अस्सी भिक्षुओं का एक संघ है। लेकिन यह एक तंग पहाड़ी के किनारे का है, जो घाटी के धरातल से आठ सौ फिट सीधे ऊपर ऊंची है। सफ़ेद दीवालें और गहरे लाल रंग की छतें बहुत प्रभाव शाली हैं और कुछ अंश तक 'डाक्टर निकोला' की याद दिलाती है किले में बड़े बड़े कमरे हैं और भोजनालय भी शिकघंग पहुँचने से यहां तक सारा समय अस-

भ्यों के बीच बीतता है, किन्तु उस निकृष्टता के बाद यहां की किले की अन्दर की सफ़ाई सचमुच ऐश्वर्य ही है। किला खार्नडेम्पा का हेडक्वार्टर है, यद्यपि वह यहां शायद ही कभी दो या तीन सप्ताह से अधिक किसी बार रहता हो। वह भी साल में केवल दो बार एक तो जुलाई में और दूसरे नवम्बर या दिसम्बर में। जनवरी से जून तक वह शिकघंग में रहता है और शेष समय अपने जिले में दौरा करने में बिताता है। उसका दौरा सालबिन नदी के दाहिने किनारे से पो नदी तक और दक्षिण में प्रायः ब्रह्मा के सीमांत प्रदेश तक होता है। सांग चो जांग से छः गांव जो सब से निकट हैं वे तीन तीन दिन तक बारी बारी से भिक्षुक-संघ और किले को लकड़ी और पानी पंहुचाते हैं।

तिब्बत की यात्रा के विषय में एक बात बड़े मजे की है, वह यह कि यहां स्थानों के नाम र दैव अर्थों से भरे पड़े हैं। कुछ नाम तो यहां की बोलचाल की भाषा में है, जिन्हें बिना लम्बी चौड़ी टीका के समझना असंभव है। उदाहरण के लिये सांगचो जांग का सीधा सादा अर्थ 'जादू का धर्म' है, और यह नाम पहले पहल संघ के लिये ही प्रयोग होता था। लेकिन आनन्द तो तब आता है जब ये नाम वर्णनात्मक होते हैं, क्योंकि उस स्थान पर पहुँचने के पहिले ही यात्री को उसके विषय में जानकारी प्राप्त हो जाती है कि वह स्थान किस ढंग का होगा। पहुँचने पर आश्चर्य होता है कि वे स्थान अपने नाम के विवरण से कितना मिलते जुलते हैं। कुछ तो आसान हैं, जैसे—शगडेन गोम्पा जिसका अर्थ है जुनियर लोगों का संघ।

सान्विन-दर्शन

कुछ के लिये कल्पना की आवश्यकता पड़ती है, जैसेः—चाटो ला जिसका अर्थ है अपर आयरन पास अर्थात् ऊंचा पथरीला तंग और कठिन मार्ग से पार करना। नाम सुनते ही रास्ते का सारा चित्र आंखों के सामने खिंच जाता है। कुछ और हैं जिनके लिये किसी प्रकार के विशेष ज्ञान की आवश्यकता होती है। उनमें से एक यिडक ला है। एक चौड़ी घाटी के किनारे किनारे चलने पर रास्ते का अंत एक तंग, बंधी हुई चट्टान के बीच में होकर दर्रे के पास होता है। यह रास्ता ठीक "यिडक" की तरह है जो सदैव भूख और प्यास के मारे व्याकुल रहता है। पेट तो उसका बहुत बड़ा होता है लेकिन गला लम्बा, पतला और उसकी देह के लिये नितांत अनुचित होता है।

संघ का एक मंदिर है जिसके मध्य भाग में एक प्रमुख 'हाल' है। यहां पर बौद्ध भिक्षुक प्रार्थना करते हैं। वे लम्बी कतारों में बैठ कर संगीतमय ध्वनि में गान करते हैं। 'हाल' में बहुत से वर्गाकार खम्भे हैं और दीवारों के किनारे संघ की डेढ़ हजार धार्मिक पुस्तकों को रखने के लिये ऊंचे ऊंचे 'कप-बोर्ड' लगे हुये हैं। प्रमुख कमरे में सैकड़ों छोटे छोटे दीपक दिन-रात जला करते हैं। हवा महक के भार से दबी होती है और दरवाजे के कुछ दूर पर एक बड़ी मूर्ति है जिसके बगल में दो-तीन छोटी मूर्तियां हैं। और भी बहुत से कमरे मंदिर में हैं जो प्रायः सभी बहुत छोटे हैं। इनमें से छोटे छोटे दीपक दिन रात जला करते हैं। उनमें से कुछ बुद्ध की मूर्तियां और धर्म गुरुओं की मूर्तियां हैं। दूसरों में शैतानों की; और एक या दो में चांदी या जिस्ते के नमूने के मंदिर हैं। इन नमूने

के मंदिरों में एक विशेष बुद्ध भिक्षु की हड्डियां हैं जो संघ में मर गया था। धार्मिक पवित्र चित्र कपड़ों पर रंगे हुये खम्भों पर टंगे हुये हैं। और समाधि घरों पर लम्बे पीले प्रिमुलस के गुलदस्ते सजे हैं। शोक का विषय है कि ये पुराने बोतल से बनाये गये हैं। संघ के सारे स्थानों को देखते समय पीछे पीछे भिक्षु लोग प्रार्थना करते हैं, प्रार्थना की घंटियां बजाते हैं और एक घन्टे की गम्भीर ध्वनि करते हुये बढ़ते हैं सांगचों जांग में मानचित्र बनाने, फिल्म डेवलप करने, या कीड़ों और फूलों को पैक करने के लिये बहुत समय मिलता है। विशेष अवसरों पर संघ में देवताओं के लिये जौ को उबाल कर बियर से केक बनाई जाती हैं। यहां के पुजारी को अनाज और चावल से बनाई हुई शराब पीना मना है। पादरी सड़क के खतरों से बचने के लिये तीन तिब्बती प्रार्थनायें सिखाते हैं, जिनको सुबह शाम कहने से रास्ता सकुशल बीतता है यह उनका विश्वास है।

पोडंग ला तक रास्ता कुछ हद तक सरल है। दर्रा खुला हुआ है, इतना कि यहां कुहरा शायद ही कभी पड़ता हो। किन्तु पोडंग ला में मानसून के समय में भी कुहरा पड़ता है, कारण यह है कि सुखू की घाटी में वर्षा अधिक होती है, और उस दर्रे के आरपार जाने वाली पहाड़ी एक बूंद पानी को भी जमा कर लेती है। रांगटो की घाटी में बनस्पति बहुत प्रचुर है किन्तु सांगचो जांग में मौसम में भी बनस्पति का नाम तक नहीं होता है। यहां चीड़ के पेड़ हैं, उनके ऊपर फर और जुनियर के पेड़ हैं, लेकिन नुकीली पत्ती वाला एक पेड़ भी नहीं दीख पड़ता है।

यहां एक विचित्र उत्सव होता है। एक भिक्षु केन्द्र में सिंहासन पर बैठता है. सामने बड़े आदमी, मुखिया, गवर्नर बाद में सारी जनता इकट्ठा होती है। वह भिक्षु कभी दोनों हाथ सीधा फैलाता है, कभी अन्दर जाता है, गिरता है, सम्हल कर फिर सिंहसन पर बैठता है, इसी प्रकार बाजे की गम्भीर ध्वनि में वह बहुत देर तक घिरा हुआ लीलायें करता है। आगे आने वाली साल भर की घटनाओं को कड़ी जबान में धीरे धीरे कहता है, जो एक स्लेट पर लिख ली जाती है। अन्त में भीड़ खतम होने पर वह थका हुआ भिक्षु चाय इत्यादि से थकावट मिटाता है। लोगों का कथन है कि साल में तीन बार नेचंग चोकयंग और कामेथरिल नामक देव इस संघ में आते हैं। किसी गुफा या बन्द कोठरी में साल भर तक मौन धारण करके वही भिक्षु तप करता है, दिन में केवल एक बार थोड़ी चाय और साम्बा खाकर रहता है। वह उस स्थान का सबसे बड़ा ज्ञानी भिक्षु माना जाता है। जीवन में एक बार इस कष्ट को सहन कर वह भिक्षु सब से महान हो जाता है।

पोडंग ला होकर सूखू पहुँचना बहुत कठिन है, क्योंकि दर्रे का दक्षिणी भाग इतना भयानक है कि बोझा लिये हुये कुली किसी खतरे को पार नहीं कर सकते हैं। इसलिये गर्मी के प्रधान रास्ते से होकर शगडेन गोम्पा जाना उचित है।

पंचम अध्याय

सांगचो जांग से शगडेन गोम्पा के लिये जोला के ऊपर से (१५८३० फिट) मार्ग जाता है। इसी मार्ग से होकर कर्नल

वेली और किंगडन वार्ड भी गये थे। इस विचार से यह मुख्य मार्ग है कि जानवर इस पर होकर जा सकते हैं और देश की सभी सड़कों से यह रास्ता कम अच्छा नहीं है। एक दिन में पन्द्रह सोलह मील तय हो सकता है। पूरा रास्ता दो दिन का है, पहिले ही दिन दर्रा पार हो जाता है। किन्तु ऐसे देश में जहां अच्छे से अच्छा रास्ता भी तेज ढालों पर लकड़ी के भद्दे पुल के बिना नहीं पार किया जा सकता है, अंग्रेजी ढंग की सड़कें बनना बड़ी दूर की बात है, क्योंकि खर्च बहुत पड़ेगा। अतः यह आश्चर्य की बात नहीं है कि सारे पूर्वी तिब्बत में किसी भी प्रकार की एक भी पहियेदार गाड़ी नहीं मिलती। यात्रा की लम्बाई मीलों में नहीं बल्कि दिनों, सप्ताहों और महीनों में बतलाई जाती है। अफ़सरों की लिखित रिपोर्टों के अतिरिक्त सारे समाचार मौखिक होते हैं।

यात्रा के आरम्भ से चार-पांच मील की दूरी पर एक पुल पड़ता है। नदी पार करने के पहिले बहुत कम चढ़ाई पड़ती है। किन्तु यहां से आगे ज़ोला जाने में कुछ अधिक चढ़ाई प्रारम्भ होती है। रास्ते में चीड़ के जंगल, सपाट खुले घास के मैदान मिलते हैं जिसमें पीले और नीले प्रिमुलस, भूरे और पीले एनीमन, और बसंती रोडोडेण्ड्रन मिलते हैं। जङ्गल में कुछ भूरे बादामी रंग के 'माकेक' भी दिखाई पड़ जाते हैं। जैसे जैसे ऊपर चढ़ते हैं, वैसे वैसे सुन्दर प्रदेश मिलते हैं। दर्रे के दो सौ फिट नीचे तक यही दशा है, किन्तु इसके बाद छोटे छोटे बर्फ के टुकड़े मिलते हैं और फूल अचानक गायब हो जाते हैं। शोक की बात है कि सांगचो जांग से कोई मार्ग नदी के बहाव

के विरुद्ध दिशा में नहीं गया है, क्योंकि जोला चोटी पर इतना चौरस है, और दोनों किनारों पर इतने साधारण ढाल हैं कि उन पर बर्फ की गहरी तहें जमी रहती हैं। जिसे जून के अन्त होने के पहिले तथा अक्टूबर के बाद पार करना कदापि सम्भव नहीं है। अक्टूबर से जून तक सांगचो जांग से शगडेन गोम्पा के लिये केवल एक रास्ता डामा ला पर से होकर जाता है, जो साल भर खुला रहता है।

जमीन इतनी चौरस है कि नेगांग और जायुल नदियों के बेसिन को पार करने पर आगे ग्यारह मील में १६०० फिट से कम नीचे उतरना पड़ता है। रास्ते के दक्षिण की ओर बहुत से लटकते हुये ग्लेशियर हैं, जो गल कर नेगांग चू में बहते हैं। घाटी की चौड़ी वृक्ष रहित सतह पर दर्जनों जानवरों के कैम्प मिलते हैं, जो याक की खाल के बने होते हैं। हर एक में आठ या दस रस्सियां बांध कर केन्द्र में एक लकड़ी पर खड़ा करते हैं। किसी ने इनका वर्णन लम्बे पतले पैर की मोटी मकड़ी के रूप में किया है, लेकिन वे गर्म होते हैं और ऋतु के प्रभाव से अच्छी तरह बचाते हैं। सब से बड़ा फायदा यह होता है कि इसके अन्दर आग जलाई जा सकती है, और धुँआ बड़ी आसानी से छत के सूराख से होकर निकलता रहता है। मैदान में यहां चार-पांच सौ जानवर चरते रहते हैं जिनमें अधिकांश याक होते हैं। इतनी ही भेड़ें भी होती हैं। याक का सिर नीचे की ओर झुका हुआ, सींगें खूब फैली हुई और पूँछ सुन्दर गुच्छेदार तथा गर्दन पर के घने आयल के बाल प्रायः जमीन तक लटकते रहते हैं। याक-गायों का स्तन इतना

छोटा होता है कि उनके बालों में बिल्कुल छिप जाता है। ये गायें डी कहलाती हैं। नर और मादा याक में ऊँचाई या डील डौल का कोई भेद नहीं होता, क्योंकि बहुत से बैल छोटे होते हैं और गायें बड़ी होती हैं। रहस्य तो उनकी देह की बनावट में है। मादा याक, ध्यान देने पर प्रकट हो जाता है कि, नर से अधिक सुकुमार और सलोनी होती हैं, दोनों में वही अंतर दीखने लगता है जो 'फिल्म-स्टार' और पुलिस के सिपाही में होता है। फिर तो कितनी ही दूर क्यों न हो तुरन्त पता चल जाता है कि कौन नर है और कौन मादा है।

शगडेन गोम्पा (१२६६८ फिट) एक बड़ी झील के पूर्वी किनारे पर एक चट्टान पर बसा है, जो पांच सौ फिट ऊँची है। सांगचो ज़ांग की तरह यहां भी एक किला, एक बौद्ध संघ और प्रायः पानी की सतह की ऊंचाई पर कई गांव हैं। यहां 'ज़ांग' पास करने पर रास्ते में कुछ खरगोश मिलते हैं, जो निकट से निकट बैठे रहते हैं और डर कर भागते नहीं। थोड़ी ही देर की यात्रा के बाद विश्राम स्थान मिलता है। यहां एक मजिस्ट्रेट भी रहता है। संघ का अच्छे से अच्छा कमरा दोपहर के समय दीपक के प्रकाश के होते हुये अंधेरे के कारण असुविधा जनक है। फिर भी लम्बाई-चौड़ाई में सांगचो ज़ांग के कमरों से बहुत अच्छे हैं।

ज़ोला पार करने पर नेगांग का 'सब डिस्ट्रिक्ट' मिलता है। झील के दक्षिण-पश्चिम की ओर यह खूब ऊंची चूने-पत्थर की पहाड़ी से घिरा है। यह पहाड़ी 'अटा कांग 'ला' और 'ज़ो ला' से अवश्य दिखाई पड़ती है। झील के पश्चिम पांच ऊँची

चोटियां हैं, जिनमें नेगांग भी एक है, ये सब मिल कर 'डार्जेट-सेंग' कहलाती हैं। इसका अर्थ है पांच चोटी का आकाश वज्र तथा अतः लोग इसे बहुत पूज्य तथा देवों का निवास-स्थान मानते हैं। यह भाग सांगचो से अधिक सूखा है, क्योंकि यहां न तो कोई जङ्गल हैं न, कुछ छोटे छोटे 'फ़र' जुनियर और नन्हीं झाड़ियों के अतिरिक्त कोई बड़े और घने पेड़ ही हैं। नीचे घाटी में दिन भर प्रातः आठ बजे से शाम के गोधूलि समय तक बड़ी तेज़ी से सरसर करती हुई हवा बहा करती है। सारे पेड़ इस हवा के क्षेत्र से दूर स्थित हैं। सपाट से सपाट खुले ढालों पर लाखों प्रकार के फूल हैं। जेनिशन का फूल तो यहां पनपने से पहले ही फूलने लगता है। प्रातःकाल जब कि हवा के झोंके झील के पानी को तितर-बितर नहीं करते, झील में बादलों और आकाश की छाया ठीक उतनी ही साफ दिखाई पड़ती है, जितनी मूल रूप में होती हैं। दूर पर एक सफेद हरा और झिलमिलाता हुआ ग्लेशियर है। एक समय यह ग्लेशियर झील के पश्चिमी किनारे तक फैला हुआ था। ग्लेशियर के होने से वहां पानी भर गया जिससे आज-कल यह झील प्रायः अठारह मील लम्बी है। कुछ साल पहले यह झील अधिक बड़ी रही होगी क्योंकि अब यह ग्लेशियर से बहकर आने वाले पत्थर के टुकड़ों से भरती जा रही है। अधिकतर पत्थर सेंगोचू नदी से आता है। सेंगों चू का डेढ़ मील चौड़ा डेल्टा झील के तट से सौ गज़ के लगभग दूर है।

सन् १९३४ में किंगडन वार्ड ने यह कहा कि नेगांग चू की घाटी के दक्षिण ओर जो पहाड़ी की शृंखला है, वह हिमा-

लय पर्वत की एक शाखा है कुछ भी हो इसका निर्णय तो भूगर्भविद्या के पंडित ही कर सकते हैं। भूगोल में इसके लिये स्थान नहीं है। कर्नल बेली ने भी नेगांग चू की खोज करना चाहा था किन्तु शगडेन गोम्पा पहुँचने पर उन्हें यहां से आगे पश्चिम की ओर यात्रा करने की आज्ञा नहीं मिली। घाटी में बहुत दूर पर 'पोबास लोग' रहते हैं। यहां के स्थान हैं 'अन्टा कांग ला' 'कर्पो ला चिट्रू ला और डेशिंग गोम्पा।'

नेगांग चू की खोज के लिये यहां से चलने पर एक झील मिलती है जिसमें एक या डेढ़ पौंड की मछलियां पानी में में दिखाई पड़ती हैं, लेकिन बौद्ध-संघ के निकट होने के कारण ये कभी पकड़ी नहीं जातीं। ग्लेशियरों को पार करने पर 'अटा कांग ला' मिलता है। रास्ते में बर्फ की तहें इस प्रकार जमी हुई हैं कि चलने में बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है। गज-गज रास्ता बर्फ पर चलने वाली छड़ी से नापना पड़ता है। अटा कांग ला ग्लेशियर के तीन पर्तों का अभाव है, जो १२११० फिट ऊँचे हैं। इसकी बर्फ गल कर उत्तर दक्षिण की ओर कई धाराओं में बहती है। एक शाखा शगडेन गोम्पा की ओर उत्तर पश्चिम रहती है, दूसरी सुखू की घाटी में दक्षिण-पूरब और एक लगभग ठीक पश्चिम की ओर 'अटा चू' की घाटी में। यहां तक तो सूर्य का प्रकाश ठीक रहता है किन्तु तीसरे ग्लेशियर को पार करते ही घाटी भर में कुहरा भरा मिलता है। बर्फ को छोड़ कर संकरी चट्टानों के किनारे किनारे बढ़ने पर कष्ट कम होता है किन्तु उसे पार कर चेटी ला पहुँचने में बड़ी मुसीबत का सामना करना पड़ता है। सारा ग्लेशियर अनेकों

टुकड़ियों में विभक्त है जिनके बीच में सौ से डेढ़सौ फीट तक गहरी और तीस या पैंतीस फिट चौड़ी धारायें हैं। रास्ता लगभग पूरा का पूरा 'फ़िशर' की पतली नालियों में होकर जाता है जहां कुछ भी सूझ नहीं पड़ता, हां कुहरा उठ जाने पर पता लगता है कि हम कहां आ गये हैं। आठ मील पार करने में ही बारह घंटे लग जाते हैं। ग्लेशियर से तंग चेटी ला समुद्र-तल से १३६९० फिट ऊंचा है। अटा मीड़ांग और यहां तक कि रांगटो की घाटी से जो यात्रा का का खां शगडेन गोम्पा जाता है, वह चटंग में रुकता है। इस कारण यहां रुकने के लिये शायद ही स्थान मिलता है। ऐसा होने पर पहाड़ी के नीचे एक हजार फिट उतर जाने पर ग्लेशियर की धाराओं के किनारे विश्राम का स्थान मिल जाता है। यहां पर जमीन कम से कम बीस डिग्री ढालू है।

अटा कांग के दक्षिण नम और घने जंगलों का देश प्रारम्भ होता है। यह यहां से सीधे आसाम तक फैला हुआ है। जङ्गलों के किसी प्रकार नष्ट भी हो जाने पर ग्लेशियर ही इस बात के प्रमाण हैं। अटा के पास मुख्य ग्लेशियर ८००० फिट ऊंचा है, किन्तु शगडेन गोम्पा में, सूखे प्रदेश में अधिक भाप बनने और गलने पर भी, बर्फ कम से कम १२५०० फिट तक नहीं खत्म होती है। सुखू की घाटी में पांच दिन लगते हैं जिसमें तीसरे दिन दर्रे के नीचे खड़े होने पर पहाड़ की चोटी दीख पड़ती है। अन्तिम मंजिल में रास्ता धीरे धीरे खराब मिलता जाता है, यहां तक कि पहाड़ों पर चढ़ने के लिये बिना विशेष ज्ञान के काम नहीं चलता है। इसके दीवार की तरह

सीधे ढालों पर नवयुवक और चुस्त-फुर्तीले और बिना बोझ वाले कुली ही चढ़ने का साहस कर सकते हैं. वैसे तो इस रास्ते से कोई शायद ही कभी जाता हो। पोडंग ला छः मील पर घाटी के पश्चिमी किनारे से थोड़ी दूर पर एक ऊंची, दांत की तरह चट्टान है। यह एक तीर्थ स्थान है. यहां पहुँचते ही कुल सामान रख कर छः छः बार दण्डवत करते हैं और आग जला कर उसमें 'सम्बा' का हवन करते। यह हवन उस देव के लिये करते हैं, जो उनके विश्वास के अनुसार वहां रहता है। यहां से चलने पर मीड़ांग मिलता है। शिंग गोम्पा जाने के लिये 'कांगरी कर्पो ला' पर से जाना पड़ता है। मीड़ांग से चल कर अटा चूं के किनारे किनारे चलना पड़ता है। यहां का रास्ता तीन-चार मील है लेकिन मालूम होता दो गुना है। मीड़ांग से कुछ चलने पर अटा चू एक गहरी, बहुत ही पतली धारा में होकर वहती है, जिसके दोनों तटों पर ग्रेनाइट की पंद्रह सौ फिट ऊँची दीवारें खड़ी हैं। मालूम होता है नदी से भी पतली उसकी धारा है, जिसमें होकर वह बहती है। रास्ता धीरे धीरे इन्हीं दीवारों पर चढ़ता गया है। रास्ता यहां तक कि अन्त में सीढ़ियों का समूह रह जाता है जो लट्ठों के बने हुये हैं। ये सीढ़ियां मिल कर झरनों के नौ सौ फिट ऊपर एक लगातार पुल बनाती हैं जो दो फिट चौड़ा है और दस या बारह फिट लम्बा है। ये तमाम पुल मिल कर पार करने के लिये एक अच्छे साधन हैं।

यह स्थान अटा चू और जायुल नू चू के संगम से कुछ ऊपर की ओर है, जहां से पर्सटङ्ग जाने के लिये मुड़ना होता है। इस घाटी में किंगडन वार्ड कुछ दूर गये थे। यह सचमुच

एक नया स्थान है। प्रारम्भ में कुछ दूर तक छोड़कर, शेष रास्ता चीड़ के जङ्गलों में हो कर जाता है, जो बहुत आनन्द दायक है। यहां मनुष्यों के जाने आने के मार्ग दिखाई देते हैं और वे भी इधर-उधर टहलते रहते हैं। घाटी में पर्सटङ्ग में एक पहाड़ी पर एक भिक्षुणी-संघ है जहां केवल एक ही भिक्षुणी रहती है; वह संघालय भी उसके पूर्वजों का घर है। सरकार की आज्ञानुसार वावस नामक एक चीन देश का सीमान्त निवासी यहां आकर स्वतंत्र बस गया। इसी ने इस गांव को बसाया है। गांव के प्राय: सभी आदमी व्यापारी हैं, जिनमें कुछ तो बहुत अमीर हैं। ये लोग उत्सवों के अवसर पर शराब भी पीते हैं, इतना पीते हैं कि नशे में मौत के निकट पहुँच जाते हैं, जाड़े में ये लोग सदिया या आगे बढ़कर कलकत्ता तक कस्तूरी ले जाते हैं और बदले में वहां से सिगरेट, कपड़ा दियासलाई, चाकू और हैट लाते हैं। इसे या तो ये शिकघंग में बेंच देते हैं या स्वयं चामडो तक ले जाते हैं। शिकघंग में इनके ग्राहक उत्तर से आने वाले व्यापारी होते हैं। टैक्स तो ये लोग कुछ भी नहीं देते, किन्तु उसके बदले में इन्हें घरों की मरम्मत और डोबा गोम्पा के चालीस बौद्ध-भिक्षुओं के खर्च का भार उठाना पड़ता है।

छठवां अध्याय

शिक गोम्पा पहुँचने तक कोई गांव नहीं मिलता है। यहां से अचानक बहुत घना जंगल प्रारम्भ हो जाता है। जायुल जू

यहां एक धारा में बहती है जो एक बड़े 'गार्ज' को काट कर बनी है। रास्ता नदी के तल पर होकर उसके किनारे जाता है, इससे सामने या आस-पास के दृश्य नहीं दिखाई देते, हां, किनारों पर ऊँचे चढ़कर देखने से सौ गज से कुछ अधिक दूर तक दिखाई पड़ता है। पर्सटङ्ग से कांगरी कर्पो लां के ऊपर होकर कोई नियमित रास्ता नहीं जाता है क्योंकि शिकारियों और कुछ धार्मिक-यात्रियो के अतिरिक्त दर्रे से होकर कोई नही जाता है। यहां पांच मील से अधिक लम्बी मञ्जिल नहीं हो सकती। सारा रास्ता ग्यारह दिन से कम में नहीं पूरा हो सकता है।

यहां से आगे नदी पर लट्ठे का पुल मिलता है जो गर्मी में ही काम आ सकता है। इस स्थान से एक रास्ता सांग कांग ला जाता है, वहां से डी-घाटी और वेवेजिया मिशमी लोगों के देश में। किन्तु उनमें और तिब्बत निवासियों में वैमनस्य होने से यह दर्रा शिकार की सीमा के अतिरिक्त किसी काम में नहीं आता है। दोनों ओर से हर साल यहां शिकारी लोग आते हैं, किन्तु इसे पार करने वाला अन्तिम मनुष्य एक चीनी था, जो १९१० में जायुल की तरफ से इसे पार कर देश को देखने गया था। इसके पहिले तिब्बत नाम मात्र के लिये चीन देश के अधिकार में था, किन्तु उस साल इसे शासन के अन्तर्गत एक सूबा बनाने का निश्चय करके न केवल अफ़सर ही बल्कि बड़ी संख्या में फ़ौजे भी भेजी गईं। फल यह हुआ कि तिब्बत के निवासियों ने विद्रोह कर दिया और सन् १९१२ में अपने शासकों को भगा कर पूर्ण स्वतंत्र हो गये। फिर

भी अभी तक पूर्वी सीमा प्रायः हर महीने बदला करती है और सदा छोटी छोटी टुकड़ियों में युद्ध हुआ करता है।

पहले तीन दिन तक तो रास्ता कुछ अच्छा रहता है, किन्तु उसके बाद विशेषकर बांस, झाड़ियों, और दस फुट ऊँचे नेटिल से बहुत ढका हुआ है। बहुत से बड़े बड़े पेड़ रास्ते में गिर जाते हैं जिससे रास्ता साफ दिखाई नहीं देता। झाड़ियों में कीड़े छिपे रहते हैं जो चलना मुश्किल कर देते हैं। रास्ते में दर्रे तक पहुँचने के लिये अनेकों धारायें पार करना पड़ती हैं। अधिकांश धारायें ग्लेशियरों से निकली हुई हैं। एक धारा बहुत पतली धारा में होकर गरजती हुई बहती है और उस पर केवल लट्ठे का पुल बना हुआ है। मञ्जिलें छोटी होती हैं तो इसका यह अर्थ नहीं होता कि समय कम होता है। चिलोंग से सात मील पर एक नदी है, जहां से किंगडन वार्ड सन् १९३३ नवम्बर में पीछे लौट गये थे। यह उत्तर की ओर से एक गहरी और लगभग दस फिट चौड़ी धारा में बहती है। इस पर एक चट्टान के गिर पड़ने से प्राकृतिक पुल बन गया है। वर्षा और पिघलने वाली बर्फ का योग पाकर यह नदी इतना बढ़ती है कि पुल बीस फिट बाकी रह जाता है। इसके अनेकों भँवर और चक्कर दार धारायें तेजी से बहती हैं। यहां से एक शिकारियों का रास्ता धारा के बिरुद्ध दिशा में नेगांग की घाटी में गया है। रास्ते में पर्सटङ्ग से आने वाले कुली हर रात आधे घन्टे तक जोर जोर जोर चिल्लाते हुये प्रार्थना करते हैं हमारे विचार से पर्सटङ्ग ही एक ऐसा गांव है

जहां के निवासी नियम के अनुसार प्रार्थना करते हैं और मीड़ांग तथा रांगचू के लोग उनकी बराबरी करने का प्रयत्न नहीं करते हैं।

पिछली सारी मञ्जिलों से चिलोंग की मञ्जिल बहुत कठिन है। ढाई मील पार करने में नौ घन्टे लग जाते हैं, वह भी हर कदम पर काट काट कर रास्ता बनाना पड़ता है। एक मील के बाद बांस के जङ्गल नहीं मिलते और टिक नामक कीड़े भी नहीं दिखाई पड़ते हैं। जङ्गल से निकल कर नदी के किनारे खुले स्थान पर विश्राम स्थान मिलता है। यहां से पश्चिम की ओर सात मील तक का दृश्य साफ दिखाई देता है वर्फीली चोटियां और ग्लेशियर दिखाई पड़ते हैं, जो चिलोंग को घोड़े की नाल की तरह घेरे हुये हैं। चीड़ के साधारण जङ्गल जो घाटी में मिलते, हैं, दर्रे तक नहीं मिलते इससे सरलता पूर्वक देखभाल बड़े पैमाने पर संभव है। किन्तु दूसरी तरफ जो परेशानी है वह यह कि इस खुले हुये भाग में 'होर्स-फ्लाई' बहुत हैं जो १३०६० फिट तक पाई जाती हैं। ये मक्खियां दर्जनों की संख्यां में देह पर भनभनाती रहती हैं, और धीरे से एक हाथ रख देने से मर जाती हैं। सूर्य डूबने पर ये गायब हो जाती हैं। नदी के लगभग एक मील ऊपर एक ग्लेशियर उत्तर-पश्चिम से आकर मिलता है। घाटी के दोनों ओर ग्लेशियर हैं जिनमें पूर्व वालों के कुछ नीचे एक नमकीन पानी का सोता है, जहां टेकिन इत्यादि पानी पीने आते हैं। यहां दो हजार फिट ऊँचे चढ़कर देखने से शिकघंग तक का दृश्य दिखलाई देता है।

साल्विन-दर्शन

दर्रे के पहले तंग घासदार घाटी है जिसमें आधे दर्जन ग्लेशियर साफ दिखाई देते हैं और उतने ही दृष्टि सीमा के परे। लकड़ी नीचे से लाना पड़ती है क्योंकि रहने योग्य स्थान ११६०० फिट पर ही मिलते हैं। पास ही कुछ गज पर एक छोटी सी नदी है, जिससे तीखी हवा होते हुये भी आराम से दिन कट जाता है। खाने के लिये मांस शिकारियों से मिल सकता है, वे एक हिरन का मूल्य छः पेन्स लेते हैं कांगरी कार्पोला और अटा कांग ला बहुत हद तक एक दूसरे से मिलते हैं क्यों कि दोनों ही की तहें मिलती हैं, फिर कार्पोला की ऊंचाई (१५४६० फिट) भी कांग ला के सन्निकट ही है। लेकिन इस पर चढ़ाई इससे कठिनतर है और बोझा लिये हुये कुली के लिये चलना अत्यन्त कठिन है। एक खराब रास्ता सीधे ऊंचा ग्लेशियर तक जाता है दर्रे तक खड्डदार बर्फ की तहें चली गई हैं। दर्रा लगभग दो फर्लांग चौड़ा और बिल्कुल चौरस है।

यहां रास्ता यकायक चिंड़ की घाटी में उतर जाता है। कहीं चिकनी बरफ, कहीं ताज़े मौरेन के टुकड़े और कहीं रेडो-डेण्ड्रन के घने जङ्गल रास्ते में मिलते हैं। जुलाई से सिम्बर तक छोड़कर यह रास्ता बहुत कम चलतू है। तिब्बत में एक प्रथा है कि पहाड़ के देवों के लिये प्रार्थना-पताका या 'स्ट्रीमर' दर्रे पर लगा देते हैं नहीं तो कम से कम एक पत्थर लेजा कर वहां के समूह में और मिला दे। कुली लोग अधिकतर रंगीन कपड़ों पर प्रार्थना लिखाकर साथ लाते हैं और उसे सब कोई चाकू से गड्ढे खोदकर खड़ा कर देते हैं। अन्त में जोर

से चिल्ला कर देवों का ध्यान अपनी दयनीय दशा की ओर आकर्षित करते हैं और शान्त मन से आगे बढ़ते हैं। ऊपर हवा तेज है इससे नीचे उतर आने पर हवा का कष्ट दूर हो जाता है। कुछ दूर आगे दर्रे के पास घाटी के उस पार एक झील है। एक चौड़े लटकते हुये ग्लेशियर से इसमें पानी आता है इसका रंग गहरा नीला है—मालूम होता है चट्टान में एक हीरा जड़ा हुआ है। कहा जाता है कि यह झील एक शक्तिशाली पानी के देव का घर है और यहां के कुली बतलाते हैं कि साफ रात में झील के तल पर आग की लपटें झिल मिलाती हुई देखी जा सकती हैं। धार्मिक-यात्री जायुल जाते हैं और यहीं पर ग्लेशियर के पास एक छोटे चौरस स्थान पर रात में दृश्य को देखने के लिये रुकते हैं। किन्तु वास्तव में बात यह है कि—बर्फीले पानी पर कुहरा पतली परतों में जम जाता है और उस पर चांद की रोशनी का प्रभाव ऐसा पड़ता है मानों अग्नि का प्रकाश हो।

कांगरी कर्पोला से पश्चिम और नेगांग की घाटी से दक्षिण की ओर एक लम्बा और पतला प्रदेश है पेमाकू कहलाता है। देश उसी तरह है जैसे मिशमी पहाड़ियों में है। पानी बरसता है तो लगातार सप्ताह भर मूसलाधार बरसता है। १२००० फिट की ऊंचाई पर यकायक जङ्गल मिलता है जो आगे घना होता चला गया है, यहां तक कि रास्ते भर बांस और काटों से होकर निकलते बीतता है। यहां टिक कीड़े मिलते हैं जिससे पानी बरसते हुये यात्रा करना बहुत दुखदायी हो जाता है। यह कष्ट और भी अधिक बढ़ जाता है, जब कि

सालिचन-दर्शन

शिंकगोम्पा के एक मंजिल पहले लीच के झुण्ड टूट पड़ते हैं। ये ऊपर ब्रह्मा की मक्खियों से भी भयानक होती हैं। यद्यपि ये चिडू चू के साथ साथ सारे रास्ते भर पाई जाती हैं, किन्तु सौभाग्यवश शिंकगोम्पा और चिंड्रा लां के बीच में या आगे नहीं मिलतीं। कुली यहां से लौट कर सीधे कांगरी कार्पो ला को पार कर छोटे रास्ते से नहीं जाते वल्कि डैशिंग गोम्पा और शगेडन गोम्पा होकर जाते हैं। आश्चर्य है कि ये लोग इस मार्ग से नहीं जाते हैं कि डाजे टसेंग के निकट की पहाड़ियों की चोटियां बहुत पवित्र और पूज्य मानी जाती हैं जिनके चारों ओर घूमा तीर्थ यात्रा का अंग माना जाता है, वल्कि जो कुछ धन कुलीगीरी में पाते हैं उससे कुछ व्यापार करने का अवसर मिल जाता है। शिंक गोम्पा में इक्कीस वौद्ध-भिक्षुओं का एक संघ और साठ लड़कों के घरों का एक गांव है जो इधर उधर बसा हुआ है। यहां के लोग ऊन और नमक के बदले में मिशमी और अबोर पहाड़ियों में बने हुये पत्थर के बर्तन लाते हैं। तिब्बती लोग मिशमी और अबोर लोगों को बिना किसी के 'लोपा' अर्थात्—असभ्य कहते हैं। यहां के लोग मिशमी अबोर लोगों के देश में कभी नही जाते क्योंकि उनका कहना है कि यदि वहां जावें तो जान से मार डाले जावें। इस स्थान के विषय में सब से अधिक ध्यान देने योग्य बात यह है कि यहां की जन संख्या मिश्रित जातियों से बनी है, जिसमें बाबा, खम्पा, (सालिचन की घाटी से) कुछ पूपा (तिब्बत के मध्य प्रान्तों से), बहुत से अबोर और मिशमी लोग हैं। बहुत से

लोग भी हैं जो इस भाग में सैकड़ों वर्ष से रहते हैं। इसका कारण यह बतलाया जाता है।

आज से कुछ ही समय पूर्व पोयू कम अधिक स्वतंत्र रहा है जिस पर शोवा का राजा शासन करता था। पोयू में पोटू-पोम--और पेमाकू के जिले सम्मिलित थे। शेष तिब्बत से यहां का शासन बहुत खराब था। समय समय पर वे लोग जो दूसरे स्थानों पर सताये गये या कानून द्वारा दण्डनीय करार दिये गये, वे यहां भाग आये और येमाकू में फैल गये। यह स्थान साल में छः महीने तक बर्फ से शेष देश से अलग रहता है और इतनी दूर है कि उन अपराधियों के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं हो सकती थी।

शिंक ने भिक्षु पुराने, असंस्कृत अथवा 'लाल टोपी' समुदाय के अनुयायी हैं, जो अब भी पोयू में विशेष रूप से सुदृढ़ है और अन्य स्थानों की अपेक्षा यूस समुदाय में 'पानिस्ट' भूत की पूजा का अधिक अंश है। यह पूजा, देश में बौद्ध धर्म के प्रचार के पूर्व, प्रायः सारे भागों में पूर्ण रूप से प्रचलित थी। संघ के दरबार में एक मन्दिर है। यहां प्रार्थना के समय बजाने के लिये नगाड़े रक्खे हैं जिन्हें भिक्षु उधर से आते जाते बजाया करते हैं। दरवाजा रङ्गीन है और उस पार नक्काशी की हुई है। यह गहरे लाल रंग के खम्भों की कतारों के बीच चमकता है। मूर्ति पर दीपक जला करता है। खम्भों पर पहाड़ों, सांपों, देवों, प्रेतों, चिड़ियों, जानवरों, भूतों और अन्य प्रकार की वस्तुओं का चित्र अंकित है। सांगचो ज्ञांग के मन्दिर से यह छोटा है क्योंकि यहां केवल एक ही कमरा है किन्तु

सालिन-दर्शन

जहां तक नक्काशी और चित्र-कला का संबन्ध है—अपर ब्रह्मा से यहां तक की यात्रा में सब से सुन्दर यही मिलता है। मन्दिर के केन्द्र में प्रधान मूर्ति पद्मसम्भव की है जो तिब्बत में आकर धर्म प्रचार करने वाले सब से प्रथम भारतवासी हैं और जिन्होंने 'समय' का महानसंघ संस्थापित किया था। इसके स्थापन का समय ७४९ ईस्वी है।

शिंक गोम्पा से उत्तर की ओर डैशिंग है। पेमाक और पोम की बीच में केवल एक ही रास्ता है जिस पर जानवर चल सकते हैं। यह बारह फुट चौड़ा है और पहिले दिन बांस के घने जंगल मिलते हैं। इस मार्ग में जोंक कीड़े नहीं मिलते हैं। चौड़े रास्ते से वे दूर रहते हैं किन्तु पास ही में झाड़ियों में बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। दूसरे दिन रास्ते में कुछ ढालू चढ़ाई पड़ती है, जिस पर कुली थक जाने के कारण बार बार आराम करते हैं। हर बार जब उनका नेता सिगनल देता है, तो वे सामान को उतार कर रास्ते के किनारे एक पंक्ति में खड़े हो जाते हैं और अपना हुक्का जला कर पीते हैं। पांच मिनट रुक कर वे फिर चल देते हैं। यहां जायुल में कुली लोग ऐसा नहीं करते; वे जमीन पर बैठ जाते हैं और सामान को उतार कर रख देते हैं। चिन्डला पर बहुत तेज ढाल मिलते हैं जिन पर फूल के पेड़ भरे पड़े हैं। यह चढ़ाई १४ ३९० फुट ऊँची है। रास्ते पर जानवर नहीं चल सकते हैं। यदि यहां पर तेज ढाल से उतरना भी पड़े तो दर्रे का उत्तरी किनारा और भी सँकरा और ढाल का अंत दो हजार फुट नीचे एक बर्फ से भरी कन्दरा में होता है। जहां चोटियों पर ग्लेशियर लटकते

रहते हैं। यहां बरफ की पतली तह होने के ही कारण चिन्द्रू ला सितम्बर से जून तक बन्द रहता है। पेमाकू से पोम के लिये लिये केवल यही और रास्ते हैं:—सूला पर होकर जो जून से से नवम्बर तक खुला रहता है, अथवा सांगपो कारा में होकर। दूसरा इतना खराब है कि इससे होकर कोई भी कभी नहीं जाता है। आगे एक एक छोटी नदी मिलती है जिसके किनारे चीड़ और रोडोडेण्डन के बन हैं। इन्हीं बनों से होकर नदी के किनारे किनारे रास्ता गया है। इस नदी का पुल इस स्थान पर टूट गया है। इससे यहां नदी नहीं पार कर सकते। यहां से तीन मील पर पुल है जहां नदी पार करना आसान है। पेड़ों और झाड़ियों से उलझते हुये लगभग तेईस मील के चक्कर काटने के बाद डैशिंग गोम्पा में प्रवेश होता है। जान हनवरीं-ट्रेसी ने अपनी पुस्तक "तिब्बत की काली नदी" में अपनी इस भाग की यात्रा का जो वर्णन किया है उसका सारांश इस प्रकार है। शमडेन गोम्पा से वह नेगांग चू की धारा की दिशा में सम जांग तक गये और वहां से चू जांग तक। फिर गोस्टा ला और डिपू ला पर होकर रागबू गोम्पा पहुँचे। अन्त में साफुक और योनी दर्रों से होकर फमजांम और डैशिंग गोम्पा वापस आ गये। उन्होंने भी इस यात्रा में मक्खियों की बड़ी शिकायत की है।

सातवां अध्याय

मध्य और पश्चिमी तिब्बत में जांग शब्द का अर्थ है घाटी में किसी सुदृढ़ स्थान पर बना हुआ किला, किन्तु पूर्व में इसका अर्थ बहुत हद तक बिगड़ गया है। और अब तो इस प्रयोग को किसी भी जिले के अफसर, यहां तक कि साधारण मजिस्ट्रेट के हेड क्वार्टर के लिये होने लगा है, चाहे वहाँ कोई किला हो या न हो। डैशिंग गोम्पा में इससे भी एक कदम आगे बढ़ गये। एक सुन्दर दुमञ्जिले आराम घर को भी यहां लोग 'जांग' कहते हैं। अगर यहां अफ़सर कभी आते हैं तो उसी समय जब उन्हें घाटी के रास्ते से कहीं जाना होता है, फिर भी उसे जांग' कहेंगे ही। आराम घर से दो सौ फुट नीचे नेगांग चू बहती है जिसे आगे चल कर यों सांगयो कहते हैं। आराम घर में इस देश की दशा देखते हुये इतने सामान हैं कि उसे ऐश्वर्य कहने में कोई अत्युक्ति न होगी। इन अनेक सुविधा और मनोरंजन के सामानों के अतिरिक्त खाने के लिये अण्डे, मक्खन, आटा, आलू, चाय, मुर्गियां, सम्वा, बकरे का मांस और शहद इत्यादि अनेकों वस्तुयें मिलती हैं। दक्षिण की ओर एक गुंबदाकार बर्फीली चोटी है जिसके किनारों पर छोटे छोटे ग्लेशियर नीचे की ओर बहते रहते हैं। यह सदा बादलों से ढकी रहती है और शायद ही कभी तेज सूर्य निकलने पर स्पष्ट दीख पड़ता है। इस कारण उसका फोटोग्राफ़ लेना असम्भव है। सन् १९११ में मुरसीद और बेली-इस स्थान से कुछ नीचे नदी के किनारे शोवा नामक स्थान से गये थे।

तिब्बत की लगभग सारी प्रधान सड़कें टट्टुओं के चलने योग्य है अतः यहाँ से आगे सवार होकर चलना अनिवार्य हो जाता है। अनिवार्य इस लिये कि जिस देश में गरीब से गरीब आदमी के पास कम से कम एक टट्टू अवश्य होता है और जिस देश में एक आध मील भी बिना सवारी के कोई नहीं चलता, उस देश में अगर कोई पैदल चलता है तो उसकी कोई गिनती नहीं होती और न कोई बात पूछता है जिससे हर जगह परेशानी उठानी पड़ती है।

यहां से शोवा तीन दिन का मार्ग है। सारे रास्ते में चीड़ आक और बर्च के साधारण जङ्गल हैं जिनमें चिड़ियां भरी पड़ी हैं। जहां पर जङ्गल खूब साफ कर लिये गये हैं वहां गांव भी बस गये हैं। गांवों में सुअर के झुण्ड पाले जाते हैं। पन्द्रह मील की सवारी के बाद शोवा मिलता है जहाँ प्राचीन जांग की गिरी हुई इमारतें अब भी प्रकट करती हैं कि कभी यह स्थान एक बड़ा जांग रह चुका है; पायू एक स्वतंत्र राजा की रियासत थी जिसे तीन माह कठिन युद्ध के बाद तिब्बत की केन्द्रीय सरकार ने अपने शासन में ले लिया। इस युद्ध में इस देश की अनेक मुख्य इमारतें जला दी गईं, जिसमें यहाँ का जांग प्रथम था। अब भी चमडो और चू जांग में दो फौजी जत्थे शान्ति और सुरक्षा के लिये रहते हैं। राजा यहाँ से आसाम भाग गया और लौटने का प्रयत्न कर रहा था कि अबोर की पहाड़ियों में मर गया। उसकी पुत्री को शोवा में ही रोक लिया गया। अधिकारियों ने उसे जमीन दे दी थी और उसके साथ बहुत सज्जनता का बर्ताव किया गया।

सालिवन-दर्शन

पो सांगपो की घाटी में उतनी ही उत्तम वर्षा होती है जितनी कि पेमाकू में। हर जगह गेहूँ, जौ और बक-गेहूँ की फ़सल होती है और सैकड़ों पीच और वालनट के वृक्ष हैं जो रास्ते के किनारे अपने आप उगते हैं। रास्ते में पेमाकू से आते हुये सौदागरों के झुण्ड टट्टुओं पर सामान लिये हुये मिलते हैं जिसमें पत्थर के बर्तन और कपड़े रंगने की वस्तुयें मुख्य होती हैं। उनमें से कुछ घर न जाकर सालीवन जाते हैं जहाँ वे नमक और ऊन खरीदते हैं। वे प्राय: खम्पा जाति के होते हैं। लम्बे, चुवास नामक लबादा पहने हुये वे बालों को कन्धे पर लकटाये हुये मेवास लोगों से बिल्कुल भिन्न होते हैं। पोवास लोग छोटे क़द के होते हैं और याक के बालों का बना हुआ वस्त्र पहनते हैं जैसा पेरू देश वाले पहनते हैं। पोवास लोगों के विषय में देश में अच्छा मत नहीं है, फिर भी वे सभी प्रसन्न हृदय, बड़े मिलनसार और आज्ञाकारी होते हैं। रास्ते में कोई विशेष बात नहीं मिलती जो उल्लेखनीय हो—हां आगे चल कर मक्खियां अवश्य आक्रमण करती हैं। तिब्बत में बड़ी दाढ़ी वही लोग रखते हैं जो बूढ़े और पूज्य होते हैं।

डैशिंग गोम्पा से चमडू जाना होता है। पो सांगपो पर एक सुन्दर पुल बना हुआ है जो नया है क्योंकि पुराना पुल युद्ध में नष्ट हो गया था। जैसा कि पूर्वी तिब्बत में सभी बड़े पुल बने हैं, यह भी लट्ठों को जोड़ कर बनाया गया है जो सब मिल कर लगभग तीस गज़ लम्बे हैं। लकड़ी के सभी प्रकार के कामों में चाहे नक्काशी हो या घर बनाना, पोवास लोग खम्पा लोगों से अधिक निपुण हैं। उनकी तलवारों का बड़ा

नाम है जिस पर वे तरंगदार नमूने का चित्रण लोहे पर करते हैं। इस विषय में यहां के लोग कहते हैं कि पोम के पुराने कारीगरों ने ऐसी तेज धार वाली तलवारें बनाई हैं कि आदमी की कलाई के बराबर मोटी लकड़ी को ऊपर फेंक कर तलवार से उसे जमीन के पहुँचने के पूर्व टुकड़े टुकड़े किया जा सकता है। ढूँढ़ने पर भी एक तलवार इस ढंग की नहीं मिलती लेकिन पोमू और खाम दोनों जगह इसकी चर्चा होती है। पो सांगपो और पोटू चू के संगम पर एक गांव है। जब एक मील से कुछ अधिक चमडो पहुँचना रह जाता है तो रास्ता लगभग तीस गज तक उड़ गया है और नदी के तट के नीचे एक चट्टान चली गई है। बिना इस चौड़े खड्ड को पुल बना कर पार किये आगे बढ़ना असम्भव है। लट्ठों पर होकर झाड़ियों में उलझते हुये उस पार जाने पर असली रास्ता मिलता है। टटटुओं को पीछे छोड़ देना पड़ता है। क्योंकि उनका पार करना सम्भव नहीं है। यहां से चमडो का दृश्य स्पष्ट दिखाई पड़ता है और ऐसा मालूम होता है कि एक सुन्दर नगर है। यहां पर एक सौ बीस पत्थर के बने हुये घर, एक संघ और एक ऊंचा जांग है जो पत्थर की दीवारों से घिरा है। दीवारों में फाटक हैं और किनारों पर मीनारें हैं। संघ को छोड़ कर शेष सभी ध्वंश अवस्था में हैं पिछले युद्ध में यह पोवा लोगों का एक केन्द्र था और बाद में शत्रुओं ने इस पर विजय पाई थी। कारवां-सराय अच्छी दशा में है जिसके पहले तल्ले पर सुखदायक कमरे हैं। चीनियों की तरह तिब्बती लोगों के भी हाथ बहुत छोटे होते हैं। जितना ही पैर

छोटा होता है उतना ही उस आदमी को गर्व होता है।

छुम्दो में मध्य तिब्बत के लगभग एक सौ सुदृढ़ सिपाहियों का जत्था रहता है। इसमें से अधिकांश लासा के निवासी होते हैं। साधारणतया वे एक खाकी कमीज पहनते हैं जिनमें सीने पर जेब और लकड़ी का बटन होता है। इसके अतिरिक्त उनकी काई विशेष वर्दी नहीं होती। शेष पोशाक उनकी इच्छा पर निर्भर रहती है। किन्तु विशेष अवसरों पर वे पूरी वर्दी एक ढंग की सभी पहनते हैं और बिगुल बाजे के साथ शान से मार्च करते हैं। ड्रिल में अधिकांश स्वीडन व्यायाम कराये जाते हैं। जैसा एक बार दाढ़ी के विषय में कहा गया है, उसके विरुद्ध ये सिपाही लम्बी दाढ़ी रखते हैं। बहुत अधिक बनाने से बाल बड़े निकलते हैं। इस कारण उन्होंने भी इसी तरकीब से बड़ी दाढ़िया रखली हैं ताकि युद्ध में उनका चेहरा अधिक भयानक मालूम हो। तिब्बती लोगों में यात्रा का प्रेम प्राकृतिक है और यह प्रेम उस समय से चला आ रहा है जब कि ये लोग इधर-उधर घूम कर बद्दू का जीवन बिताते थे। इस देश की यात्रा में छुम्दो स्मरणीय है क्योंकि यहां से आगे वर्षा बहुत कम होती है और कुहरा नहीं पड़ता है। इन दोनों की अधिकता इतनी कभी नहीं होती कि काम में बाधा पड़े। पोटो चू तक जलवायु में अंतर मालूम होने लगता है क्योंकि पेमाकू और पो सांगपो की घाटी में जो जंगल मिलते हैं वे यहाँ कहीं नहीं हैं। ज्यों ज्यों आगे बढ़ते हैं देश खुला और सूखा मिलता है, काँटेदार झाँड़ियाँ और घास मिलती हैं, किन्तु किनारे किनारे ऊँचे पर चीड़ के वृक्षों के अतिरिक्त किसी प्रकार का

जङ्गल नहीं है। फलस्वरूप यहाँ मान चित्र बनाना बहुत सरल है। यहाँ से उत्तर की ओर चलने पर एक चौड़ी और सूरज के प्रकाश से लुक्त घाटी मिलती है जिसके दोनों किनारों पर बर्फ और ग्लेशियर के टुकड़े हैं। यहां बहुत से गांव हैं जिसमें घर पत्थर के बने हुये हैं—कुछ मिट्टी के भी हैं छत विशेष कर यहां भी लकड़ी है और तेज ढालदार है जिससे स्पष्ट होता है कि भारी वर्षा यहां भी हो जाती है। छुन्दो के सोलह मील पर पो चू एक गहरी खाई में बहती है। घाटी ग्लेशियर से कटी-फटी है किन्तु असली तलहटी चौरस और चिकनी है जैसे मालूम होता है कि बर्फ के कारण यह ऐसी हो गई है। यहां से तेरह मील पर श्मशान में कुछ कबरें हैं। ये नदी के दायें किनारे पर दस से लेकर साठ फुट तक ऊंची हैं। संख्या में ये लगभग सौ हैं और प्राय: अधिकांश गुम्बदार हैं। पोवा लोग इनके विषय में कुछ नहीं जानते। उनका कहना है कि यहाँ पृथ्वी है और सदा से ऐसी ही है। वे सचमुच बहुत प्राचीन हैं जो तिब्बती लोगों के पूर्वजों ने बनाई थीं। उनमें से बहुतों पर प्राचीन प्रार्थना-पताकायें लगी हुई हैं।

यूरू गोम्पा के उत्तर की ओर बहुत संकीर्ण हो गई है और ११०००-१३००० फुट पर यह फर और रोडेडेण्ड्रन के बनों और सुन्दर रंग की झाड़ियों से खूब ढकी हुई है। छुन्दो से चार मंजिल तक तो रास्ता कठिन चट्टानों पर से होकर जाता है, किन्तु पांचवीं पर यह अचानक स्लेट और चूने-पत्थर के पहाड़ों पर चढ़ जाता है। ऊपर बहुत से छोटे ग्लेशियर लटकते हुये हैं। यही दशा टुण्डला ला तक १७२८० फुट की ऊंचाई

पर रहती है। आगे सालिवन और ब्रह्मपुत्र का बेसिन मिलता है। दर्रे के दोनों ओर के दृश्यों में महान अंतर दीख पड़ता है। दक्षिण में बर्फीली चोटियों के झुण्ड की ओर गहरी जंगलों से भरी घाटियां हैं। उत्तर में बर्फ का नाम भी नहीं किन्तु दूर पर कुछ गोलाकार पहाड़ियों का समूह है। सारा देश सूखा और भूरा है; कभी कांटेदार झाड़ियां और जुनिपर दिखाई देते हैं। पहाड़ की श्रेणी किस प्रकार एक ओर नमी इकट्ठा कर देती है और दूसरी तरफ के लिये जरा भी नमी नहीं होती; इसका सबसे अच्छा उदाहरण यहीं पर मिलता है। इसका प्रमुख प्रभाव और भी स्पष्ट हो जाता है जब कि हम देखते हैं कि टुंगला ला के दक्षिण भारी वर्षा होते हुये सांगपो और पो सांगपो नदियों ने अपनी तलहटी को ८००० फुट तक काट डाला है और पथरीली कारा में बहती हैं जब कि इसके ठीक उत्तर की ओर पास ही में सालिवन नदी ११००० फुट पर एक चौड़ी घाटी में शान्ति पूर्वक बहती है।

पाला ला के दक्षिण में जङ्गल नहीं हैं या बहुत कम हैं। पाला ला पार करने पर तीन हजार फुट नीचे ग्या लाम नामक बड़ी सड़क मिलती है जो लासा से बाटंग और वहां से पेकिंग जाती है। कहीं तो यह पतली है और कहीं सुन्दर सड़क की तरह इतनी चौड़ी है कि एक गाड़ी आसानी से जा सकती है। यहीं पर आठवीं शताब्दी में विजयी तिब्बती सेनाओं ने चीन में प्रवेश किया था और यहीं हजारों वर्ष से अधिक काल से चाय, नमक और मूल्यवान सामान लिये हुये सौदागर आते जाते थे। यह संसार की एक ऐतिहासिक सड़क है। ग्या लाम

पर चलने वाले प्रायः सभी मनुष्य अपनी काठी के कपड़े के नीचे एक तलवार रखते हैं जो काम के लिये नहीं बल्कि दिखावट के लियेहोतीहै।

शोपांडो में गलियां तंग और ढालू हैं। यहां 'जांग' और का खां सराय है। यह एक दुमंजिला और भारी मकान है जिसमें एक ओर भारी सा लकड़ी का फाटक लगा है और पूर्वी तिब्बत के सूखे भाग के अन्य घरों की तरह छत चौरस है जिस पर कड़ी मिट्टी पीट दी गई है। दीवारें पत्थर की हैं जो मिट्टी का गारा लगा कर जोड़े गये हैं। सन् १६२५ में पेरीर यहां आये थे और १८८१ में किशन सिंह यहां से हो गये थे सिंह जी की यह अन्तिम और सब से बड़ी यात्रा थी। तिब्बत की मुख्य सड़कों पर अनेकों भिखारी मिलते हैं। पोयू के लोग कहते हैं कि शोपांडो एक दीवार से घिरा हुआ बड़ा शहर है किन्तु वास्तव में घाटी के पूर्वी ढाल पर एक छोटी सी जगह में एक सौ चालीस घरों की घनी बस्ती के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। दीवार केवल नगर के ऊपरी भाग की ओर है। सड़क की ओर किसी भी प्रकार की सुरक्षा का प्रबन्ध नहीं है। फिर भी शोपांडो एक प्रसिद्ध स्थान है। यहां से होकर बहुत बड़ा व्यापार का माल आता जाता है और आपो बढ़ने के पहिले यहीं पर सब को चुंगी देनी होती है। दिन भर याक की भीड़ लगी रहती है और खच्चर आते जाते रहते हैं। आदमी चिल्लाहट मचाते रहते हैं। चाय और मक्खन के डिब्बों की भरमार रहती है। खाम में टैक्स नक़द दिया जाता है किन्तु यहां ११११० फुट पर गेहूँ और जौ के रूप में। इस कर को चुकाने

के लिये फसल काट कर लगभग बीस स्त्री-पुरुष जांग की छत पर उसे पीटते हैं। इस समय ये आमने सामने दो पंक्तियों में खड़े होकर मल्ले को जोर से पीटते हैं और हर बार एक ध्वनि में चिल्लाते हैं। सभी तिब्बत निवासी के हृदय में व्यापार से स्वाभाव प्रेम होता है। यहां तक अफसर लोग भी यात्रा करते समय कुछ सामान साथ ले लेते हैं, उसे नौकर को दे देते हैं जो उसे कुछ नियत फायदे की रकम अन्त में उन्हें देता है। यदि मालिक को देने के बाद कुछ बचता है तो उसे नौकर ले लेता है किन्तु अभाग्यवश यदि घाटा हो जाता है तो उसे अपनी जेब से पूरा करना पड़ता है।

ग्यालाम के समान मुख्य सड़कों पर यात्रा करने में 'डाक' मिलने में सुविधा होती है। डाक का अर्थ केवल यही है कि आते जाते हुये यात्रियों, सौदागरों और मजदूरों से गप-शप करने पर बाहरी दुनिया का बहुत हाल कुछ मालूम होता है। सच्ची बात तो नहीं मालूम होती क्योंकि बात चीत में बढ़ा चढ़ा कर कहा जाता है, फिर भी एक दम 'न' से तो अच्छा ही होता है शोपांडो के जांग में तो जान पड़ता है रायटर के सम्बाद-आफिस में खड़े हैं। झुण्ड के झुण्ड व्यापारी और सरकारी नौकर सदैव आते ही रहते हैं जिनसे लड़ाई, राजनीति और देश की दशा का पता कुछ हद तक लग ही जाता है।

— —

आठवां अध्याय

शोपांडी साढ़े तीन मील पर गया लाम यकाएक दक्षिण, पूर्व की ओर घूमकर लो जांग और छुन्दो की ओर चली जाती है। यहां से विपरीत दिशा में चङ्ग ला पड़ता है जो १२७३४ फुट ऊँचा है। इस दर्रे पर चढ़ने पर सालविन का दृश्य दिखाई देता है। चोटी से दो हजार फुट नीचे शांत और तेज़ धारा में यह नदी बहती है। कोई चट्टान या झरना इसके मार्ग में नहीं पड़ता है। कुछ घण्टे बाद शापर्थंग मिलता है। यहीं पर मुख्य रास्ता नदी को पार करके बायें किनारे पर जाता है। नदी पार करने के लिये याक की खाल से मढ़ी नाव होती है जो काफी बोझ ले जा सकती है। उसके टूट जाने पर लट्ठे का छोटा सा बेड़ा बनाया जाता है जो अधिक से अधिक चार बन्डल पार ले जा सकता है। बेड़े पार करने में बहुत तेज चलाने पर भी एक कारवां को दिन भर लग जाता है। नदी सत्तर गज चौड़ी है और बीच में धारा तेज है। बेड़े वर्गाकार और भारी होते हैं।

प्राचीन 'गाल' की तरह कई तिब्बत को भागों में विभक्त कर सकते हैं, चांग थांग अर्थात् उत्तरी मैदान। यह एक सपाट पठार है जो धीरे धीरे मंगोलिया के घास के मैदान से मिल कर लुप्त हो जाता है। उप-पठार है जिसमें चौड़ी घाटियां और गोलकार पहाड़ियां हैं। तीसरा नदी और काराओं का देश जिसमें घनी बनस्पति है और जो बहुत उपजाऊ। समष्टि रूप से थांग थांग के निवासी हमेशा अपने याक और

टट्टू को लिये हुये एक चरागाह से दूसरे चरागाह टहलते रहते हैं—उप पठार के लोग गांवों में बसे हुये हैं किन्तु किसान की अपेक्षा जानवरों के गल्ले वाले हैं और नदी एवं काराओं के प्रदेश के निवासी लगभग पूर्णरूप से खेतिहर किसान हैं। तीसरे डिवीजन में चायुल, पेमाकू और होयू हैं तथा लुंग ला पार करने पर दूसरा डिवीजन मिलता है। तिब्बती प्रदेश की जलवायु शुष्क है, भाप बहुत ही तेजी बनती है जिस कारण चायुल में भी हिम रेखा सदैव १७००० फुट की ऊंचाई पर है। सूखी भूरी पहाड़ियों के किनारे जुनिपर और कांटेदार झाड़ियों के साधारण बन मिलते हैं जो बन नहीं कहे जा सकते। छोटी छोटी नुकीली घास भी उगती है जो बहुत सूखी होती है।

सालिवन के किनारे किनारे जाने वाले रास्ते का अन्तिम स्थान जिमडा है जिससे उत्तर कोई रास्ता नहीं है। यहां से घाटी के ऊंचे किनारे पर चढ़ कर देखने पर मालूम होता है कि सालिवन बहुत नीचे एक गहरी कारा में बहती है। तिब्बत की भेड़ें यूरोप की भेड़ों की तरह सुस्त और डरपोक नहीं होतीं बल्कि बहुत फुर्तीली और मजबूत होती हैं। वे अपनी सुरक्षा स्वयं कर सकती हैं और किसी भी अवस्था में खतरे से बच सकती हैं। पश्चिम में वे बकरों की भांति बोझा ढोने के काम आती हैं और लाहुल तथा अन्य स्थानों में भारतीय बाजारों के लिये रवाना होती हैं तो नमक और सुहागे के भरे बोरे और ऊन लाद कर चलती हैं गर्मी प्रारंभ होने के पूर्व ही वे अनाज लाद कर लौटती हैं। पो ला को पांच हजार फुट पर पार कर नीचे चार हजार फुट तेज ढाल से उतरना पड़ता है और यहां पर

इदासी मिलता है। दो ला समुद्र तल से १६६१५ फुट ऊंचा है इदासी की घाटी नदी के तल से सौ फुट ऊंचाई तक जुनिपर और रोडोडेण्ड्रन की झाड़ियों से ढकी हुई है। साल्विन के उद्गम तक पहुँचने के लिये घाटी के नीचे उतर कर पश्चिम की ओर चार दर्रों को पार कर नदी के बायें तट पर पहुँचना अधिक अच्छा होता है। ये चारों दर्रे १६००० फुट या कुछ ऐसे ही ऊंचे ही। यहां साल्विन की सब से बड़ी सहायक नदी सू चू धीरे धीरे बहती है। अन्तिम बारह मील एक गहरी खाईं में होकर पड़ता है जिससे ऊंचे के गांवों से दीख नहीं पड़ती। १२००० फुट पर भी यहां अधिक से अधिक ताप-मान ४६° फारेनहाइट होता है। जब तक सूर्य चमकता रहता है घर की छतों पर काफी गर्मी रहती है। नवम्बर के प्रारंभ में यहां जौ की फसल तैयार हो जाती है किन्तु बालें इतनी सूखी होती हैं कि काटते समय दाने जमीन पर गिर जाते हैं जिससे उनको बीनने में बड़ा कष्ट होता है। जब ऐसा सूखा होता है तो यहां के लोग टोली बनाकर भगवान से पानी बरसाने के लिये प्रार्थना करते फिरते हैं। एक बूढ़ी और नगाड़ा बजा बजा कर 'ओम्-मनी ओम् मनी' को बार बार संगीतमय स्वर में चिल्लाती है। यदि रात में कुहरा भी अच्छी तरह पड़ जाता है तो फसल ठीक हो जाती है। ये लोग इसे प्रार्थनाओं का बदला ही मानते हैं पोयू के बाहर पूर्वी तिब्बत में आलू नहीं होता है जहां मध्य प्रान्त के लोग रहते वहां आलू खरीदा जा सकता है।

इस रास्ते पर बोझा ढोने के लिये याक काम आते हैं। ये इतने शान्त होते हैं कि पीठ पर दोनों ओर बक्स का बोझ

लिये हुये चले जाते हैं और यदि अभाग्य से रास्ते में यकायक मोड़ आ जाता है तो ये सीधे चले जाते हैं जिससे गड्ढे में फिसल जाते हैं। यह इनकी गम्भीरता विचार शीलता का परिचय देता है। ये एक घन्टे में आसानी से दो मील चल सकते हैं। ढाल या चढ़ाव इनके लिये एक ही है किन्तु जब दो पेड़ चट्टानों के बीच से होकर जाना पड़ता है तो ये भूल जाते हैं कि उनकी देह पर बोझ भी रखा हुआ है। फलस्वरूप ये उसमें फंस जाते हैं और उनकी शान्ति भंग हो जाती है। पीठ पर लदे हुये सन्दूक पेड़ में फंस जाते हैं और ये जमीन पर गिर पड़ते हैं। जब तक बोझ भी जमीन पर गिर नहीं पड़ता या इनके बंधन टूट नहीं जाते ये उठने की लाख कोशिश करते हैं पर उठ नहीं पाते। यदि यात्रा में याक पर बक्स ले जाना होता है तो वे मजबूत बनाये जाते हैं ताकि जल्द न टूट न सकें चमड़े के थैले ले चलना सबसे अच्छा होता है क्योंकि उनके टूटने-फूटने का डर नहीं रह जाता है। सू चू को एक लम्बे पतले पुल से पार करने पर घाटी के बहुत तेज ढाल पर चढ़ना पड़ता है जिसमें झाड़ियां और छोटे पेड़ उगे हुये हैं। सालोंन की घाटी में एक स्थान पर रास्ता अचानक दो हजार फिट नदी से ऊपर उठ जाता है। से गांव घाटी की तलहटी में किनारे किनारे बसे हैं जो नवम्वर दिसम्बर में सिंचाई और घरेलू कामों के लिये पानी छोटे छोटे सोतों से पाते हैं। फसल केवल टर्निप और जौ की होती है। यहां से आगे बढ़ने पर 'काऊ' मिलता है। यहां से सालविन के उद्गम की ओर एक रास्ता जाता है जो बिनाबोझ वाले आदमियों के काम आ

सकता है, जब तक कि दिसम्बर में नदी जम नहीं जाती। उत्तरी की ओर एक तंग घाटी में बीस मील चलने पर १२७३० फुट की ऊंचाई पर जानवरों के चरने के लिये चरागाह है और पास में चार छोटी छोटी झोपड़ियां हैं बर्फ के कारण अधिक से अधिक अक्तूबर तक यहां जानवर रहते हैं। गांव के निवासी अच्छे यात्री के लिये याक के बालों का कैम्प तैयार कर देते हैं। यह यहां की पुरानी प्रथा है कि गांव के उचित दूरी तक वे कैम्प आग, पानी और अन्य वस्तुओं का प्रबन्ध स्वयं कर देते हैं। कैम्प ऐसा होता है कि बन्द नहीं किया जा सकता जिससे रात में सर्द हवा और बर्फ का कष्ट होता है।

बीस मील आगे चलने पर मिचेन ला (१६११० फुट) के उस पार रुकीथंग मिलता है। इस गांव में बारह घर हैं परन्तु खिड़की किसी में नहीं हैं क्योंकि उपले को जलाकर गर्मी घर के अन्दर सुरक्षित करते हैं। याक और भेड़ों के चरने के लिये जमीन बहुत छोड़ दी गई है किन्तु आधे एकड़ पर खेती होती है। यहां रहना ऐसा मालूम होता है मानों किसी रास्ते के कैम्प में ठहरे हुये हैं न कि किसी स्थायी गांव में। यहां तक कि उप-पठार पर भी कभी कभी धारायें मिलती हैं और डेरी की सड़क पर साढ़े नौ मील तक घाटी के किनारे बहुत ढाल हैं जो नदी तक दो हजार फुट तक चले गये हैं। इससे नदी और किनारे के बीच में रास्ते के लिये बहुत ही थोड़ा बचता है। प्रायः सपाट ढालों पर बहुत स्थानों पर बर्फ के कड़े चिकने टकड़े मिलते हैं जिस पर होकर रास्ता किनारे किनारे जाता

है। याक तो यहां गिरते नहीं किन्तु टट्टूओं के लिये यह रास्ता एक समस्या है। इस रास्ते को छोड़कर कठिन मार्ग से चलने पर टट्टूओं पर सवार रहने पर भी कपड़ा पानी से भीग जाता है, फिर भी लुढ़कने से तो अच्छा ही होता है। डेरी से चार फर्लांग आगे एक गर्म पानी का सोता है। यहां के लोग कहते हैं कि इसके पानी से सारी बीमारी दूर हो जाती है। बीमारी के अनुसार लोग यहां एक बौद्धभिक्षु के आज्ञानुसार दिन में स्नान करते हैं। सोते से भाप निकलती रहती है। इसमें स्नान करने से गर्मी आ जाती है और स्नान उत्तम होती है। डेरी में एक आराम घर है जिसमें खिड़कियां भी हैं। इस घर में स्वच्छता देखकर आश्चर्य होता है। डेरी १२८२० फिट की ऊंचाई पर बसा है और क्यों कि इतनी ऊंचाई पर फसलें नवम्बर के मध्य तक नहीं पकतीं. इसलिये जाड़ा प्रारम्भ होने के पहिले कटाई-मड़ाई करने के लिये बहुत कम समय बचता है। पुरुष, स्त्री और बच्चे काम में मेहनत से लगे रहते हैं। एक मील पश्चिम पर यहां एक बौद्ध संघ है। इस संघ के कुछ भिक्षु भी उनकी सहायता करते हैं। दूसरे लोग अनाज को खत्तियों में भरने या पयाल को जानवरों की पहुँच से बाहर मैदानों में इक्ट्ठा करने में लगे रहते हैं। इस पयाल को टट्टू दिसम्बर से मार्च तक खाते हैं जब कि याक के अतिरिक्त किसी के लिये चरने को कुछ नहीं रहता है। तिब्बत के निवासियों का विश्वास है कि कोई आपत्ति आने का कारण देवो-भूतों की अप्रसन्नता है। देश—निवासियों की अपेक्षा विदेशी लोग इनको अप्रसन्न करने में अधिक हाथ बंटाते हैं इस कारण

आपत्ति आने के कारण स्वरूप नहीं माने जाते हैं। किन्तु अभाग्य है विदेशियों की कि जब फसल बहुत अच्छी होती है तब उसका कारण कोई भी यह नहीं कहता कि यह विदेशियों की उपस्थिति के कारण हुआ है।

सार्लविन के बायें किनारे पर होकर एक सीधा रास्ता डीग जाता है जो वैसे ही खराब है जैसे काऊ से जाने वाला रास्ता है। इस रास्ते से जाने में दो मञ्जिलों की बचत तो होती है किन्तु बक्सों को कुछ नुकसान अवश्य पहुँचता है। कीरोथंग से अलग होने पर डीग के लिये प्रधान रास्ते से जाना अच्छा होता है। यह रास्ता साल्विन के संगम तक गया है। हर जगह एक बात विशेष आकर्षित करती है, वह यह कि किसी बौद्ध-संघ के पास जितने पालतू जानवर और चिड़ियां रहती हैं उतना और कहीं नहीं। बात यह है कि इस प्रकार के स्थानों पर कठोर से कठोर हृदय का आदमी भी जीवों की हत्या नहीं करता है। साल्विन की घाटी में गड़ी चिड़ियों में 'फीसंट' बहुत अधिक मिलती हैं जो साठ-सत्तर के झुण्डों में किनारों पर इधर उधर चलती रहती हैं। प्रातः काल में इस पहाड़ी से उस पहाड़ी पर कलरव करती हुई फिरती हैं। ये विशेषकर दो प्रकार की होती हैं। एक तो एक दम सफेद होती हैं जैसे कि जिमडा पर मिलती हैं और दूसरी पीली भूगी होती हैं, जिनके पंख और पूंछ पर काले धब्बे होते हैं। चांगपो टेंगचेन से सोक गोम्पा को जाने वाली सड़क पर पाड़ा पड़ता है। इसके आगे कीरोथंग मिलता है।

बे तार के तारों द्वारा समय सूचक सिगनलों के पूर्व यात्रियों

को पूर्वी-पश्चिमी मार्गों पर चलते सम देशान्तर स्थिर करने में बहुत कठिनाई पड़ती था। अब तो समय समय पर निश्चित रूप से देशान्तर—स्थिर कर लेने से यात्रियों को कोई परेशानी नहीं उठानी पड़ती है। प्राचीन यात्रियों ने शेयांडो को नियत स्थान से तेरह मील पूर्व ओर रक्खा था। पाडा सुमडो भी उन्होंने मानचित्र पर आठ मील पश्चिम दिखाया है। तिब्बत में टट्टू की सवारी विचित्र प्रकार की होती है। झुण्ड के झुन्ड टट्टू एक लम्बी कतार में रास्ते पर धीरे धीरे चलते हैं। अमीर आदमी उसके औरत-बच्चे और नौकर रंगीन कपड़े पहिने हुये, साथ में राइफल और तलवार सजाये हुये टट्टूओं पर सवार होकर चलते हैं। दूर से घंटियों की मधुर आवाज सुनाई पड़ती है। कीराथांग और डीग के बीच में पंद्रह हज़ार फुट ऊचा दर्रा है जहां हवा घण्टे में पचास मील बहती है। यह हवा सीधे चांग थांग से आती है और इतनी ठंड होती है कि एक मिनट में नाक सुन्न पड़ जाती है। दर्रे से कुछ दूर पर भेडों के चरने के लिये चरागाह है। यहां भेड़ें बड़े कद और बलुये भूरे रंग की होती हैं। यहां रात रात भर बर्फ के तफान चलते हैं। दिन में हवा इतना तेज और सर्द होती है कि, कमरे की खिड़कियों के सूराख से भी आने पर ठंडक असह्य हो जाती है। जमीन पर बर्फ़ के बादल कट कट कर गिरा करते हैं किन्तु हवा-अचानक बन्द हो जाती है और इतनी शान्त हो जाती है है कि मालूम होता है—कि तूफान आया ही नहीं। दिसम्बर प्रारम्भ होने के पूर्व ही सालिवन जम जाती है जिस पर होकर आसानी से आवागमन हो सकता है। इससे बहुत समय

बच जाता है जो ऊपर की ओर पुल बनाकर पार करने में खर्च होता है। डीग से कुछ दूर पर ही नदी के जमे होने से अधिक दूर नहीं जाना पड़ता है। यहां के चमडा गोन्पा चौदह मील से अधिक है। यही एक ऐसा स्थान आता है जहां सारा काम एक दिन में समाप्त हो जाता है। एक सुविधा यह भी होती हैं कि घाटी ठीक पश्चिम की ओर गई है जिससे संध्या समय भी प्रकाश रहता है। चमडा गोम्हा के निकट ढालों पर साधारण के जङ्गल और रोडडेन की झाड़ियां हैं। यह स्थान आकर्षक है। नदी से पचास फुट की ऊंचाई पर यह बसा हुआ है और मिट्टी की दीवाल से घिरा हुआ है। यह नब्बे घरों का एक अच्छा खासा गांव हैं जिसमें एक सौ बीस भिक्षुओं का संघ है। यहां एक सुन्दर आराम घर भी है जो शोपांडो छोड़ने के बाद सर्वोत्तम है।

नवां अध्याय

कहा जाता है किसी स्थान पर पश्चिम में एक बड़ी नदी आकर साल्विन में मिलती है, किन्तु काऊ से साल्विन का किनारे छोड़ देने पर यह संगम नहीं मिलता है। चमडा गोम्पा में साल्विन को ग्यामो नो चू कहते हैं। यह इसका तिब्बती नाम है। ग्यामो नो चू का अर्थ है 'चीन की नीली नदी।' यह इसका उचित नाम भी है क्योंकि यह यूनान में बहती है और सर्दी की ऋतु में जमने के पहिले इसका रंग गाढ़ा नीला

हो जाता है जो बहुत सुंदर लगता है। नीलापन इतना गाढ़ा होता है कि लगभग काला रंग हो जाता है। वर्षा के शेष समय में यह कीचड़दार और पीली रहती है जैसे कि नीली डैन्यूब है। यहां दो प्रश्न सामने आते है। एक तो यह कि यहां से सालिवन के उद्गम की ओर जाकर तब देश की छान-बीन की जाय अथवा यहां से चमडा गोम्पा लौट कर कार्य प्रारम्भ किया जाय। दूसरा ही ठीक पड़ता है इस कारण मामूली सामान लेकर लौटना पड़ता है।

यहां से चलने पर ला गेन पर चढ़ना पड़ता जिसके ढालों पर बर्फ खूब पड़ती है। दर्रा १८३५० फुट ऊँचा है और जनवरी से दिम्बर तक बन्द रहता है। दिसम्बर से इसे पार करने वाला कोई आदमी जीवित नहीं बच सकता है। यह दोनों ओर तेज ढाल दार है जिन पर बर्फ की मोटी तह जमी रहती है जिस पर चलने में जानवरों को बड़ा कष्ट होता है। चढ़ाई समाप्त होने के पहिले ही हवा शांत हो जाती है किन्तु छोटे छोटे बर्फ के कड़े टुकड़े बरसने लगते हैं जो धीरे धीरे बढ़ते जाते हैं। कुहरा लगभग बीस अंश तक पड़ जाता है जिससे देखने में असुविधा होती है और धातु के बने हुये यन्त्रों को हाथ में लेने से क्षण भर में हाथ शून्य हो जाते हैं। आठ मील पर एक तंग घाटी में जमी हुई नदी के किनारे कैम्प बनाने योग्य स्थान है। बमघंग गोम्पा से तम्बू वगैरह मिल जाते हैं। आग जलाने के लिये झाड़ियां और याक के चरने के लिये घास पत्तियां बहुत हैं, जिससे यहां आराम पूर्वक पूरा सप्ताह चाहें तो बिता सकते हैं। ला गेन के बिल्कुल पास ही १६००० फुट की ऊँचाई से

देखने पर मालूम हाता है कि पद चिन्हों की एक रेखा गई हुई है जो घाटी के किनारों पर होती हुई नीचे विलीन हो गई है। ये चिन्ह बहुत साफ तो नहीं हैं किन्तु देखने में नंगे पैरों के से चिन्ह प्रतीत होते है। कुछ लोग कहते हैं कि वर्फ के तेंदुओं के पैरों के चिन्ह हैं और कुछ इसे पहाड़ी आदमियों के पैर का बतलाते हैं कहा जाता है ये पहाड़ी आदमी साधारण आदमियों की तरह होते हें। इनके कन्धों, बाहों और सिर पर लम्बे बाल होते हैं और ये सफेद चमड़े वाले और नंगे होते हैं। एक गदा लेकर ये बर्फ पर बड़ी तेजी से दौड़ सकते हैं। नियम के विरुद्ध ये 'बहरेल' का शिकार भी करते हैं। किन्तु बहुत संभव है कि ये चिन्ह रीछों के हैं जो घाटी से दूसरी घाटी आते जाते रहते हैं।

आगे चलने पर वमथांग पोम्पा मिलता है जो समुद्र तल से १२४८० फुट ऊंचा है। यहां कुछ घर और एक बौद्ध संघ है किन्तु दुकाने नहीं हैं। वमथांग गोम्पा में पचास गज चौड़ी और बहुत गहरी है। साल्विन नदी चमडा गोम्पा में चौड़ी और वहुत गहरी है। इससे प्रकट होता है। मे चू नदी छोटी है। यहा से ग्याभो नू चू एक दिन का रास्ता है। संगम से दो मीम पर सेटिंग नामक स्थान है जहां एक जांग है। रास्ता पंद्रह मील लम्बा है और सारा का सारा साधारण जुनियर के के जङ्गलों से हो कर बीतता है। दर्रे के पास कुछ फीसेंट चिड़ियां दिखाई पड़ जाती है जो सफेद और लाल रङ्ग की होती हैं। इनके ध्यान देने योग्य बात यह है कि इनका पर मजबूत नहीं होता है। खतरा होने पर पहिले तो ये सौ दो सौ

फुटतक पहाड़ी पर दौड़ती हुई चढ़ जाती हैं और वहीं से देखती हैं, किन्तु भय बढ़ने पर ये अपने पंखों को फैला कर उड़ती है जैसे हवाई जहाज नीचे आने पर और कभी कभी पंखों को फड़फड़ाकर रफ्तार बढ़ाने की कोशिश करती हैं। यही इनका सारा उड़ना है, नहीं तो शान्तिपूर्वक इधर उधर टहलती रहती हैं।

सेटिंग का मैनेजर नकशू विरू के जांगपून का छोटा अफसर है—जो काऊ और चमड़ा गोम्पा के बीच के देश का कर वसूल करता है। यहां कर सामान के रूप में दिया जाता हैं गर्मी में सौ याक मक्खन और जाड़े में दो सौ लासा भेजा जाता है। इस प्रकार केवल यही छोटी बस्ती साल भर में छत्तीस हजार पौंड मक्खन देती है। इससे देश की जानवर सम्बन्धी संपत्ति की अधिकता पर आश्चर्य प्रकट होता है कि इतना अधिक कर-रूप में देने पर भी लोगों के पास आवश्यकता से अधिक बच रहता है। मक्खन यहां बिकता भी सस्ता है। कर में खाल, ऊन और याक के बाल का कम्बल भी सम्मिलित रहता है। पोयू के सौदागर यहां चिली और मैडर लाते हैं और बदले में उपयुक्त वस्तुयें और पठार का नमक ले जाते हैं। मीकांग की घाटी से जायुल और नेगांग को केवल लाल नमक जाता है। चांग थांग से आने वाला सफेद नमक इस लाल नमक से बहुत अच्छा होता है। वमथांग से लगभग बीस मील ऊपर येंगार गोम्पा मिलता है। यह स्थान इतना सुखदायक है कि कई दिन तक छोड़ने का जी नहीं चाहता। यहां से आगे बढ़ने पर बर्फ में कई घटनायें हो जाती हैं क्योंकि यहां घाटी बेहद सर्द और

बमथांग गोम्पा के निचले भाग से भी अधिक खुली हुई हैं। यहां पर टट्टू और यात्री दोनों बिना फिसले या लुढ़के बिना नहीं रह सकते। बर्फ इतनी पड़ती है कि तापमान दिन निकलने पर ही कथनांक से ऊपर उठता है।

एक कारवां सराय के पास बौद्ध-संघ मिलता है। भिक्षु लोग बीस दिसम्बर को 'पीली टोपी समुदाय' के संस्थापक सांग कापा के प्रति-सम्मान प्रदर्शित करने के लिये उत्सव मनाते हैं। मठ में सैकड़ों दीपक जलाये जाते हैं और भिक्षुओं के घरों में पीले तारो की पंक्ति की तरह खिड़कियों से दिखाई देते हैं। रात में देर तक गान-प्रार्थना होती है सौर तुरुही इत्यादि बाजे बजाये जाते हैं सिगार गोम्पा में लगभग दो सौ बौद्ध-भिक्षु हैं जिनमें से अधिकांश चेहरे से बड़े दयालु दिखाई पड़ते हैं—यह चिन्ह बुडढो में मुंह की खाल की सिकुड़न है। यूरोप के निवासी इस प्रदेश में अनोखे समझे जाते हैं जिनकी भिक्षु और साधारण जनता बहुत इज्जत करती है। वहां से आगे बढ़ने पर उन्नीस मील पर एक चरागाह है (१४७०० फिट) जो थामसा ला से लगभग बारह मील दूर है।

जब कोई भिक्षु मर जाता है तो उसे लाल कपड़े में लपेट कर एक खम्भे में बैठी हुई अवस्था में बांध देते हैं। इसे तीन दिन तक रक्खा करते हैं। हर दो घण्टे बाद एक भिक्षु नियुक्त किया जाता है जो वहां उपले की आग बनाकर पहरा देता है। नियत समय पूरा होने पर लाश को पहाड़ पर ले जा कर उसे तोड़ कर उसे चीलों और गीधों को खिला देते हैं।

सालिवन-दर्शन

यहां के लोगों का कहना है कि तीन दिन का समय इसलिये दिया जाता है कि मृतक आत्मा मांस के शरीर से छुटकारा पाने का समय पा जावे। उसे जल्द नष्ट कर देने से आत्मा को अस्थायी घर 'वहां' में कष्ट दिया जाता है। हवा, अग्नि और पानी-इन तीनो मूल तत्वों में चिड़ियों के रूप में हवा को ही लाश देना उत्तम है। ये लोग पृथ्वी अर्थात् मिट्टी को मूल तत्त्व नहीं मानते हैं। साधारणतया इस नियम का पालन करने में तिब्बत निवासी भारतवर्ष के पारसी लोगों से मिलते जुलते हैं। गरीब लोग बड़ी नदियों में लाश को फेंक देते हैं क्यों कि जलाने के लिये ईंधन अधिकांश भाग में नहीं मिलता है। जो लोग लकड़ी खरीद सकते हैं वे हवा में लाश को जलाते हैं।

पेंगार गोम्पा के ऊपर हवा को रोकने वाला कोई न होने के कारण यहां हवा सीधे घाटी में नीचे की ओर दिन भर बहा करती है। इस प्रदेश में दो मील से अधिक एक बार में नहीं चला जा सकता क्यों कि देह गर्म करने के लिये बार बार याक के ऊपले से आग बनाकर सेंकना आवश्यक हो जाता है। पेंगार गोम्पा से डेढ़ मील पश्चिम की ओर एक रास्ता गे चू को पार करता है और एक बड़ी नदी की-उद्गम की ओर चलता हुआ एक दर्रा पार करता है। फिर ग्यालाम पर स्थित ल्हारिंगो नामक स्थान को चला जाता है। यह स्थान यहां से चार दिन के रास्ते पर है। उपर्युक दर्रा ब्रह्मपुत्र और सालिवन के बेसिन में है। सालिवन की खोज करने के लिये इस रास्ते को छोड़ देना पड़ता है गे चू से थामसा ला (१६९७० फुट) तक

सारे रास्ते भर तेज ढालों पर चढ़ना पड़ता हैं थामसा ला से सालिवन की घाटी में एक तेज ढाल गया हुआ है। येंगार गोम्पा से दूसरी यात्रा वनस्पतिशास्त्र की दृष्टि से बहुत उत्तम और आकर्षक है किन्तु शरीर के कष्ट के लिये अद्वितीय है पाला ३४ अंश तक पड़ता है लगातार बर्फ के तूफान बहा करते हैं। किन्तु दर्रे एक हजार फुट नीचे दक्षिण की ओर पिगमी खरगोसों की गुफायें हैं जो घाटी में पांच मील तक फैली हुई हैं। ये आधी मील चौड़ी हैं। जमीन तमान गुम्मदाकार गुफाओं से भरी पड़ी है जिनमें ये पिगमी घुसे हुये देखते रहते हैं। ये इस बिल में घुसकर नीचे नीचे दूसरी में जा निकलते हैं। जायुल और पोयू के पिगमियों से ये अधिक भूरे हैं और गिनी के सुअरों से मिलते जुलते हैं। यहां की लोमड़ियां पंद्रह इंच से अधिक ऊंची नहीं होतीं, कान लम्बे होते हैं, रंग बलुआ भूरा और देह में घने कांटे होते हैं। कुछ बाज भी दिखाई पड़ जाते हैं। आगे चलने पर बहुत से फीसेंट मिलते हैं जो प्रायः नीले रंग के होते हैं आगे शकधंग गोम्पा है जहां चार छः बौद्ध भिक्षु रहते हैं। यहां एक संघ भी है। यह स्थान थामसा ला से निकलने वाली नदी और सालिवन के संगम से नौ मील लगभग नौ सौ फुट ऊपर है। ऐसे देश में स्वागत करने के लिये जुनियर की लकड़ी सौ-दो सौ गज रास्ते के किनारे किनारे जला देंगे जो उपयुक्त ही है।

तिब्बत में ढङ्ग और अच्छे गुणों की अन्य वस्तुओं से अधिक चाह है। प्रातः काल सूर्य निकलते समय किसी गांव में पहुँचना बहुत शुभ माना जाता है। शकधंग गोम्पा से

नाकशू विरू छः मील पड़ता है। नदी को बर्फ की तहों पर पार कर संघ की दीवारों के किनारे किनारे रास्ता जाता है। नकशू विरू में एक गवर्नर रहता है। यह स्थान उतना बड़ा नहीं है जितना इसकी प्रसिद्धि है यहां एक संघ है जिसमें एक सौ साठ बौद्ध-भिक्षु रहते हैं। इसके अतिरिक्त गांव के घर मील भर या इससे भी अधिक दूर दूर घाटी में फैले हुये हैं किन्तु किसी प्रकार का किला नहीं है। यहां ठहरने के लिये कमरे अच्छे और प्रकाश दार मिलते हैं जिनमें खिड़कियां भी होती हैं किन्तु तिब्बत के मध्य प्रदेशों के घरों में एक खराबी सब जगह मिलती है, वह यह कि खिड़कियों में सीसे और कांच नहीं रहते। इसके स्थान पर पुराने पत्रों को छोटी छोटी लकड़ियों में लगा कर खिड़की को बन्द कर देते हैं जिससे मानचित्र या पढ़ने-लिखने के काम में आंखों पर जोर देना पड़ता है। नकशू विरू १६२०० फुट ऊंचाई पर स्थित है और यहाँ भाप बनने का काम बहुत तेज होता हैं। इस कारण—मध्य शिशिर और शरद में भी कुछ दिन छोड़ कर जमीन पर बर्फ नहीं रहने पाती है। यह पिघलती नहीं क्यों कि उस समय तेज से तेज सूर्य निकलने पर भी शायद ही तापमान शून्य अंश से कभी ऊपर उठ सके, हां—गायब हो जाती है। जब बर्फ ज़मीन पर नहीं रहती तो पांच में चार दिन तो यहां तेज हवा चलने के कारण धूल की आंधी अवश्य आती है। कुछ भी बचाव का प्रबन्ध किया जाय धूल कमरे में इतनी अधिक मात्रा में आती है कि लिखने इत्यादि का काम असंभव है क्यों कि एक क्षण में कागज़ सफेद से काला हो जाता है।

नकशू विरू जी कुण्डो से लासा वाली सड़क पर स्थित है। इस कारण इस प्रदेश में बाहर से जो समाचार आते हैं वे यहां मिल जाते हैं।

यहां से साल्विन के मुहाने की ओर को एक सड़क जाती है जो केवल सर्दी के मौसम में जम जाने पर काम आती है। प्राय: बर्फ इतनी मोटी और कड़ी तहों में जमती है कि एक रेलवे ट्रेन पास हो सकती है, किन्तु कभी कभी पतली तहों के नीचे नदी बहती भी रहती है। यहां नदी की धारा बहुत ही तेज होती है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है गम्भीर विचार वाले यात्री को इन स्थानों पर बड़ा भय रहता है। इस रास्ते से चमडा गोम्पा छ: दिन में मिलता है किन्तु थोड़ी ही दूर चल सकने के कारण कम से कम सात मञ्जिलें करनी पड़ती हैं। नकशू विरू के कुछ पहिले घाटी में बहु-पति प्रथा प्रचलित है जिससे स्त्रियों की चोरी होने पर कई पति एक साथ पत्नी-विहीन हो जाते हैं। चोर दूर से पति लोगों से हर्जाना तय करते हैं। एक स्त्री का मूल्य यहां बीस—न्संग या लगभग आठ शिलिंग छ: पेंस बहुत है। हां, जब किसी के यहां कोई मर जाता है तो भिक्षु लोग बड़ी संख्या में उसके घर पर इकट्ठा होकर नगाड़े पीटते, हड्डी की तुरही बजाते और मृतात्मा की शांति के लिये प्रार्थना करते हैं।

— —

दसवां अध्याय

तिब्बत में भिखारियों की एक अलग जात होती है जिन्हें जन्म से यह शिक्षा मिलती है कि किसी प्रकार का काम करना नीचता है। अनेकों व्यवसायी भिखमंगे टहलते रहते हैं जो दिन भर मेहनत करने वाले मजदूरों और प्रायः किसानों से मोटे हृष्ट-पुष्ट, अधिक अच्छा कपड़ा पहनने वाले और खाने वाले होते हैं। लोगों का विश्वास हैं कि उनकी श्राप से बड़ा अनिष्ट होता है इससे जिससे जो कुछ मांगते हैं वह इन्हें अवश्य देता है। लेकिन ये भिक्षुक यह सब समझते हुये अधिक नहीं मांगते कुछ साम्बा पार कर संतुष्ट हो जाते हैं। ये सभी सवारी पर चलते हैं। पुरुष स्त्री दोनों बन्दरों की तरह जल्दी जल्दी मुंह में डाल कर खाते हैं। यह विचित्र आदत केवल भिक्षुओं तक ही नहीं सीमित है वरन् कुछ अन्य प्रदेशों में भी लोग ऐसे ही भोजन करते हैं जिनमें खम्पा लोग प्रधान हैं, पूछने पर उत्तर देते हैं कि स्वाद तो अच्छा नहीं है किन्तु क्या करें यहां की यह प्रथा है।

चांग थांग में डाकुओं का राज्य है। जहां पहिले तलवार, भाला, बर्छी और कुछ अन्य भद्दे औजारों का प्रयोग होता था अब वहां बंदूक, राइफल आटोमैटिक शस्त्रों का प्रयोग होता है जिससे लासा और उत्तर के बीच में व्यापारियों को तीन-चार सौ के समूह में अस्त्र-शस्त्र से सज कर चलना पड़ता है। ये लोग चांगपा कहलाते हैं। जितना ये गल्लों की रक्षा के लिये प्रसिद्ध हैं उतना ही डाका मारने में भी। चांगपा लोग घास के पीछे

उसी तरह फिरते हैं जैसे पानी लहरों के पीछे। जब उत्तर में निचले मैदानों में घास उगती है तो सर्दी में जानवरों को लेकर चले जाते हैं, किन्तु जब वसंत के बाद यहां नई घास उगने लगती है तो फिर लौट आते हैं। यदि अप्रैल के अन्त में यहां से चल दें तो वे तब तक कुछ सौ मील उत्तर की ओर ही रहते हैं।

एक बात जो ध्यान देने योग्य है वह यह है कि तिब्बत में बौद्ध धर्म का बहुत प्रचार है। यहां भारत के शिक्षकों के कार्यों और शिक्षाओं का चिन्ह बहुत मिलता है, हां, पूर्वी तिब्बत में बहुत कम है। एक यह है कि यहां के चित्रकार संघ की दीवार और कपड़े पर 'जीवन-चक्र' बनाते हैं। एक चक्र पांच दिन में तैयार होता है। इस जीवन चक्र को सर्व प्रथम आनन्द अपने शिष्यों को उत्पत्ति की समस्या समझाने के लिये जमीन पर चावल के दानों से बनाते थे। पहले यह सीधा साधा था किन्तु समय के परिवर्तन के साथ इसमें इतना कांट छांट और मिलावा हुआ है कि वर्तमान चक्र को समझना अत्यन्त कठिन है। यह चक्र नर्क के राजा के आधार पर आश्रित है। यह राजा शैतान नहीं है वल्कि केवल दण्ड देने वाला है। चक्र के किनारे किनारे मानव जीवन के प्रारम्भ से अन्त तक की अवस्थायें चित्रित की गई हैं, जिनमें इन्द्रियों का खाली घर (लाश) भी है। बीच में नर्क और स्वर्ग हैं, जहां पाप के अनुसार उचित दण्ड दिखाया गया है। ऊपरी दो कोनों में 'जीवन चक्र' से मुक्त हुई कई आत्मायें हैं जो निर्वाण में लीन हो रही हैं।

साल्विन-दर्शन

साल्विन की खोज के लिये नकशू विरू से ग्या लाम सड़क की ओर जाना अच्छा होता है, क्योंकि साल्विन की घाटी में शोपघंग और बोर्सीघंघ के बीच की यात्रा में समय का अच्छा उपयोग हो सकता है। नकशू विरू से ऊपर साल्विन बर्फ से एक दम मुक्त है। यहां से पौन मील पर एक सुन्दर पुल के चिन्ह अब भी मिलते हैं जो लट्ठे से बना हुआ है। अब यह पुल उतनी अच्छी दशा में नहीं है। यहां साल्विन को 'नाक चू' अर्थात् काली नदी कहते हैं। जनवरी से मार्च भर में यह नदी दो फिट बढ़ जाती है। पानी का रंग हरा है पानी गन्दा है। जाड़े में धूल बर्फ पर जम जाती है वही इसको गन्दा बना देती है। नदी के तट से ध्यान देने पर पता चलता है कि गर्मी के अन्त होने के पहले यह नदी दस फिट और बढ़ती है।

ग्यारहवां अध्याय

तिब्बत के लोग अतिथियों के बड़े भक्त होते हैं। यह तो उनका स्वभाव ही है, किसी गांव या अस्थायी निवास स्थान के मुखिया का अनिवार्य कर्तव्य है कि वह वहां रुकने वाले अच्छे यात्री को अपनी और जनता की ओर से मांस, साम्बा, मक्खन चांग और कर्ड की भेंट दे। तीन दिन तक मुफ्त भोजन और रहने का स्थान आदि भी देना पड़ता है। इसके बाद साधारण ढंग से सामान मोल लेना पड़ता है और कमरे या घर के किराये के रूप में थोड़ी रकम देनी पड़ती है। जायुल ही ऐसा भाग है जहां वह नियम नहीं हैं, और देश में यह नियम है।

केवल मध्य प्रदेशों या प्रान्तों और सांग के लोग ही अपने को तिब्बती कहते हैं। दूसरों से पूछने पर उत्तर मिलता है, नहीं हम खम्पा है, हम पोबा हैं और हम जायुली हैं। ये 'तिब्बती' अपने को दूसरों से उच्चतर समझते हैं और आश्चर्य है कि दूसरे इन्हें उच्चतर मानते भी हैं। इसलिये जब ये तिब्बती लोग बाहरी जिलों में जाते हैं तो बड़ी उच्छृङ्खलता और घमंड से भरे हुये बर्ताव करते हैं।

घामसा ला अप्रैल में भी बर्फ से बन्द रहता है। इस दर्रे और गे चू के बीच घाटी को बिना नदी के जमे हुये नहीं पार किया जा सकता है। इस लिये इस ऋतु में यहां से आगे पांच मील पूर्व की ओर जा कर शार ला (१६३८४ फुट) पर होकर पार करना पड़ता है। यह यात्रा सत्रह मील की है जिसमें प्रायः पानी या बर्फ से होकर जाना पड़ता है। टट्टुओं पर सवार यात्री को तो उतना कष्ट प्रद नहीं होता है किन्तु बेचारे कुली के लिये बड़ी मुसीबत होती है। आगे चल कर घना कुहरा (२७ अंश) और बर्फ की आंधी मिलती है जो रात भर तेजी से बहती रहती है, यहां तक कि कमरे के अन्दर आकर बहुत तेज सर्दी पैदा कर देती है। गे चू के घाटी का उत्तरी भाग शार ला के उस पार के भाग से अधिक सर्द और सूखा है। नकशू बिरू से चलने पर छोटे छोटे रोडेडेण्डन के पेड़, झाड़ियां और जुनियर के पेड़ मिलते हैं किन्तु यहां तो छोटी छोटी कंडीली झाड़ियों के अतिरिक्त बर्फ ही बर्फ दिखाई देती है। पेम्बार गोम्पा पहुँचाने पर दो प्रश्न उठते हैं एक तो यह कि यहां से एक रास्ते से ल्हारिगो जावें, दूसरा यह कि सेटिंग होकर ग्यालाल

तक जांवें क्योंकि सेटिंग ग्यालाय तक भी एक रास्ता जाता है। कुछ भी अन्तिम विचार हो, अर्थ यही निकलता है कि एक से जाने पर दूसरा छोड़ना ही पड़ेगा।

गे चू के किनारे कुछ देखने योग्य नहीं मिलता जिससे मंजिले जल्द ही तय हो जाती हैं। हां एक बात दिलचस्पी के योग्य होती है, वह यह कि यहां घास निकलते ही रंग रंग की तितलियां नीचे घाटी में एकत्रित होने लगती हैं। खरगोश सफेद फीसेंट भी यहां मिलते हैं। फीसेंट जोड़े में रहते हैं और यह पहचानना कठिन होता है कि कौन नर है और कौन मादा। यहां गे चू साफ़ और सुन्दर हरे रंग की है। संगम के पास साल्विन और इसकी तुलना के ध्यान से तो यह और भी सुन्दर लगती है क्योंकि साल्विन इस समय तक मटमैला पन छोड़ कर अच्छे दूध के चाकलेक की तरह हो जाती है। सेंटिंग से आगे कई दर्रे पार करने पड़ते हैं। इनसे निकलने पर 'चाइना रोड, मिलती है। यह साल्विन की ओर पूर्व को मुड़ गई है। मेम्बार को रुकने के योग्य कोई अच्छा घर नहीं है। वही हालत है जो रुकीघङ्ग में होती है। हां एक बात अच्छी है वह यह कि यहां गोबर के उपलों के स्थान पर कोयला मिलता है। यहां एक संघ है जो सुन्दर इमारत की तरह दिखाई पड़ती है। इससे दो सौ तीन बौद्ध भिक्षु रहते हैं।

सेटिंग से साढ़े बारह मील प्यूट ला (१४६५०-फुट का एक नीचा दर्रा) पर से जाने पर लासेट नामक एक गाँव मिलता है जो सा चू के बायें किनारे पर बसा हुआ

है। यहां चीन वालों ने सन् १९१० में एक किला बनाया था। इसमें एक सूराखदार कमरा है जिसमें खड़े होने पर ग्यालाम की दोनों दिशाओं का दृश्य दीख पड़ता है और अन्य सारी खिड़कियां अंदर नीचे देखने के लिये हैं। किले में लकड़ी का एक भारी फाटक लगा हुआ है। साचू नदी साल्विन से काऊ के पास मिलती है। तेइस मील की लम्बी यात्रा के बाद पेम्नर मिलता है। पास ही में शोपाण्डो भी पड़ता है। टुंगला के बन्द रहने पर यहां अंडे चमडो ला होकर पायू से लाये जाते हैं। गर्मी के आरम्भ में यहां कीड़े और फूल विशेष कर प्रिमु-लस जो ढालों पर निकलते हैं—बहुत मिलते हैं। शोपाण्डो से ग्या लाम सड़क पर होते हुये दो दिन में ल्हो जांग आता है। रास्ते में डेथो गोम्पा पड़ता है। इस भाग में उल्लेख नीय बात यह है कि सारे रास्ते भर लाल पैर वाले सैकड़ो लार्क गा रहे थे, मानो इनका जीवन का आधार ही यही है। ल्हो जांग का अर्थ है दक्षिणी किला। यहां घाटी के पश्चिमी किनारे पर एक बड़ा जांग है और पौन मील पर एक दीवाल से घिरा हुआ एक संघ है जिसमें दो सौ चालीस बौद्ध-भिक्षु रहते हैं। नदी के दाहिने किनारे पर एक गांव भी है जिसमें एक सौ तीस घर हैं। पास ही एक कारवां-सराय है जिसमें कई कमरे हैं। यहां बहुत अच्छे फूल मिलते हैं, जो बहुत ही कम अन्य स्थानों पर मिलते हैं, जैसे आर्चिड, प्रिमुलस, रोडोडेण्ड्रन और ईरिस। तेरह हजार फुट की ऊंचाई पर भी यहां कुछ न कुछ गर्मी रहती है। ल्होंजांग में लगभग सौ चीनी भी बसे हुये हैं जो प्रायः सब के सब ग्यालाम सड़क पर खच्चर चलाते हैं तिब्बत की

सरकार इनके साथ अच्छा बर्ताव करती है और इन्हें किसी प्रकार का कर नहीं देना पड़ता। सभी सरकारी नोटिसें दोनों भाषाओं में लिखी जाती हैं। यद्यपि जून में यहां बर्फ नहीं गिरती किन्तु कभी कभी कभी अचानक ही पहाड़ियों पर बर्फ लगातार गिरना प्रारम्भ हो जाती है और चारों तरफ के दर्रे बन्द हो जाते हैं। असमय की ईश्वरी लीला को यहां के प्रायः सभी लोग किसी बड़े लामा की करतूत बतलाते हैं। ल्होजांग के बहुत आकर्षक दृश्यों में यह प्रधान है कि यहां जानवर किस प्रकार काटे जाते हैं। जायुल में उन्हें फांसी लगाकर मारते हैं किन्तु यहां, खास काम में, चाकू से जल्द ही उसके सीने को फाड़ डालते हैं और एक हाथ अन्दर डालकर दिल को देह से बाहर निकाल लेते हैं।

कई सौ साल बीते यास के महान तार तार चंगेज खां ने कहा था:—"खाने में जानवरों को मारने के लिये उनका गला काटना मना है इन्हें बांध देना चाहिये, सीने को फाड़ डालना चाहिये और शिकारी को हाथ से दिल निकाल लेना चाहिये। इससे प्रकट होता है कि यह वर्तमान खम्पा प्रथा उस समय से प्रारम्भ हुई जब कि तेरहवीं सदी के प्रथम भाग में मंगोल लोगों ने तिब्बत पर विजय प्राप्त की दूसरी विशेषता यह है कि संघ के दालान में स्त्री और पुरुष दोनो तस्टा या स्तूपों का नमूना बनाने में व्यस्त रहते हैं और साथ साथ धीमी आवाज में गाना गाते जाते हैं। यह काम इस लिये करते हैं कि देवता गण प्रसन्न हो जावें और फसल होवे। हर घर से स्त्री या पुरुष आते हैं। डेढ़ माह में यहां जौ के अंकुर सात इञ्च तक बढ़ आते हैं।

देश दर्शन

ल्होजांग से दक्षिण-पूर्व और चार दिन के रास्ते पर शारीजांग है। यहां से चार मील आगे घाटी खूब चौड़ी है जिसके तेज ढालदार किनारे चूने के पत्थर के बने हैं। अनुमान लगाने पर पूर्व की पहाड़ी दो हजार छः सौ फुट होगी किन्तु नापने पर लगभग सात हजार फुट निकलती है। इसी तरह सभी पहाड़ियां यहां भ्रमात्मक हैं। यहां की प्राकृतिक शोभा को देखकर कौन ऐसा होगा जो मुग्ध न हो जाये। दिन बड़े आराम से बीतते हैं। हर जगह जमीन पीले किंग कप और वरट कप से ढकी हुई है। इधर उधर सफेद एनीमन, छोटे छोटे नीले ईरिस और लम्बे प्रिमुलस के फूलों में पेड़ उगे हुये हैं। छः फुट ऊंची झाड़ियों पर सफेद--रोडोडेण्ड्रन और छोटे पीले फूल एक फुट की झाड़ियों पर लदे हैं। आकाश अत्यन्त नीला है, तितलियां नाच रही हैं, सफेद बादल समुद्र पर पतवार की तरह टहल रहे हैं और दूर पर दक्षिण में बर्फ से ढके हुये पहाड़ जायुल की ओर चले गये हैं। इस अपूर्व सुन्दर दृश्य को देखते देखते जी तो कभी ऊब नहीं सकता, हां, चलते समय सन्तोष की सांस नहीं आवेगी। डू चू की घाटी में नदी को पार करने पर संगूनांग पड़ता है। यहां भी पुल लट्ठों का बनता है। यह स्थान कई कारणों से ध्यान देने योग्य है। एक तो यह कि यहां के लोग नदी पार के लोगों से विभिन्न बोली बोलते हैं, और उनमें से केवल आधे लोग ग्यालाम की बोली को समझ सकते हैं। एक तिब्बती कहावत है जो इस प्रकार है :—"हर जिले की अपनी बोली, और हर लामा की अपनी सूझ।" यह कहावत उतनी कहीं नहीं घटित होती जितनी खाम में किन्तु अधिकांश

भिन्नतायें वैसी ही हैं जैसे यार्क शायर और डेवनशायर में हैं। बड़ा आश्चर्य होता है कि घाटी के दोनों ओर के निवासियों में गत अठारह वर्षों से आपस में घोर वैमनस्य है जो इस सीमा तक बढ़ गया है कि यदि कोई डू चू को पार करता है तो उसे मार डाला जाता है। किसी विशेष यात्री और उसके कुली पर यह बात नहीं लागू होती है। तीसरे यह कि यहां खटमल घरों में बहुत पाये जाते हैं—इतना अधिक कि झुण्डों में दीवाल पर रात में टहलते रहते हैं। जायुल और पोंयू के समान चीड़ के देशों को छोड़ ये हर जगह गर्मी में बहुत मिलते हैं। चीड़ से इन्हें घृणा है न जाने क्यों!

बारहवां अध्याय

शारी जांग में नदी पर याक की खाल का पुल बनता है जिसके तैयार होने में तीन सप्ताह का समय और पचास याक की खाल लगती है। लट्ठे का पुल बनने का प्रश्न ही नहीं उठता है क्योंकि बाढ़ के समय नदी एक सौ बीस गज़ चौड़ी हो जाती है। घाटी के किनारे इतने ढालू हैं कि पार करने पर इतना स्थान भी नहीं है कि एक कारवां उस पार उतर सके। फिर सब से बड़ी समस्या तो यह है कि जहां तक दृष्टि जाती है केवल दो पेड़ दीख पड़ते हैं, वे भी बेहद छोटे! जून के अंत में पुल के पास ६८०० फुट की ऊंचाई पर भी रात बहुत गर्म होती है। यहां ट्राशिस जांग के लिये दो रास्ते हैं। एक तो बहुत पश्चिम होकर जाता है और दूसरा वा होकर जाता

है। शारी गोम्पा पाशो जिले में है जो एक लामा की निजी रियासत है। इस समय यह नेजो टेम्प गोम्पा के तेरहवें वंशज के आधीन है। सर्व प्रथम शारी गोम्पा पर उसी ने अधिकार किया था, और पश्चिमी चीनियों को बौद्ध धर्म का अनुयायी बनाने का बहुत श्लाध्य प्रयत्न किया था। चीन में मृत्यु हो जाने पर उनकी लाश याशो नगर लाई गई और जिस्ते के मन्दिर पर सोने की पत्ती लगाकर उसमें उनकी समाधि लगाई गई। एक खिड़की से आज भी इन महात्मा का मुंह देखा जा सकता है। वहां पर एक बड़ा जांग और दो बड़े संघ हैं। राशो का अधिकारी लामा लासा में रहता हैं और रियासत भर के सारे कर उसे दिये जाते हैं जो प्राय: कागज के रूप में होते हैं। शारी जांग में एक झाड़ी की जड़ से कागज बनाया जाता है। जड़ को छालों को औरतें निकाल लेती हैं और सफेद लकड़ी को लुग्दी बनाने के पहले दो दिन तक उबालते हैं। तब इसे चाये के बर्तनों में पानी डाल कर मिलाते हैं ताकि यह गाढ़ी क्रीम की तरह बन जाती है। अब इसे लकड़े के तख्ते पर सूती कपड़े डालकर उन पर १ तली पर्तों में फैला देते हैं। तख्तों को सूखने के लिये धूप में रख देते हैं। बाद में बड़ी आसानी से कागज को निकाल लेते हैं। ये कागज के टुकड़े क्षेत्रफल में दस वर्ग फुट होते हैं। दो हजार शीट कागज हर साल केवल शारी से ही लासा भेजा जाता है जहां उसे वेंच कर लामा को अच्छी आमदनी मिलती है। कहते हैं जिस पेड़ से यह कागज़ बनाते हैं वह स्टेलरा चमीसम है किन्तु इसकी जड़ वैसी नहीं होती जैसी कि उन पेड़ों की होती है जिनसे वहां के

निवासी बनाते हैं। मालूम होता है ये लोग इसे व्यापार की दृष्टि से छिपाना अच्छा जानकर किसी को ठीक ठीक बत लाना नहीं चाहते।

वा-ट्री शिस रोड को दो भागों में अलग बांट देने से सुभीता पड़ता है। पहले बा ला जाना ठीक होता है। यहां जङ्गली लहसुन और पादीना अधिकता से मिलता है। जो खाने के काम आता है। एक ही दिन में जाकर फिर शारी जांग वापस आया जा सकता है डू चू की यात्रा में यहां से आठ मील पर एक तंग घाटी में १४८२० फुट की ऊंचाई पर बसन्ती रोडोडेण्ड्रन, पीले और गुलाबी प्रिमुलस, ईरीस और तरह का भीनी महक वाली झाड़ियां हैं। फोकर ला पर ९७२४० फुट की ऊंचाई चढ़ने पर ज्यों ज्यों आगे बढ़ते हैं हैं कुहरा घना होता जाता है, जिससे मानचित्र या दृश्य-दर्शन का किसी प्रकार का कार्य सम्भव नहीं होता। दर्रा केवल जून से सितम्बर तक खुला रहता है। पूर्व की ओर बर्फ की गहरी तहें जमी रहती हैं जो चढ़ने में सब से कठिन होती हैं। अन्तिम तीन सौ फुट इतने ढालू हैं कि याक झुक झुक कर चलने का प्रयत्न करते हुये भी हार मान जाते हैं। तिब्बती बूट चलने के योग्य नहीं रहते, चढ़ने में तो और भी हानिकारक होते हैं। सिर इन बूटों को पहन कर बर्फ में मनुष्य के लिये पैर जमाना उतना कठिन नहीं होता जितना जानवरों के लिये चोटी से नीचे दो हजार फुट का ढाल है जो इधर उधर चूने के पत्थर के बने हुये टुकड़ों से भरे हैं। यहां मौसम साफ रहती है—अतः दृश्य दर्शन और चित्रण का कार्य सरल है। ढालों के अन्त में जोंगरा

मिलता है। यद्यपि जोंगरा १२३०० फुट ऊंचा है फिर भी यहां मौसम कुछ गर्म होने लगती है—जिससे तिब्बती ढंग के कपड़ों को उतार कर कमीज और पैन्ट पहनने में कोई कष्ट नहीं होता है। बड़ी कठिनाई का सामना करते हुये फोकर ला पहुँचने पर दिखाई पड़ता है कि यहां सब कुछ बादलों और वर्फ के तूफानों से बराबर हो गया है। यहां हवा चमड़े में घुसती सी ज्ञात होती है और आधे ही घण्टे में यात्री बहुत कुछ बर्फ से ढक जाता है। यदि मौसम ठीक रहा तो जोंगार से आकर यहां का विवरण लिया जा सकता है। अन्यथा नहीं। राकपा जाने के लिये कम से कम सामान साथ में ले जाना उत्तम होता है। किन्तु एक कठिनाई पड़ती है जो यह है। राकपा तक डू चू की घाटी चू जांग के अधिकार में है। उसके नीचे दाहिना किनारा पाशू के अधिकार में है, और बायां ल्हो जांग के। इस कारण आवागमन का प्रबन्ध भिन्न भिन्न मजिस्ट्रेटों के हाथ में है। रास्ते में कीड़े बहुत मिलते हैं, विशेष कर—ग्रास हापर और तितलियां। राकपा का रास्ता लगभग आधा नदी से दो हजार फुट की ऊंचाई पर छोटे छोटे पर होकर जाता है। इस पर सवार होकर चढ़ना अच्छा नहीं, क्योंकि कहीं तो बड़े बड़े बोल्डर और कई संकरी पगडंडियां हैं। जैसा कि कहा जा चुका है जोंगाह में गर्मी में घर की छत पर सोना अच्छा होता है क्योंकि सारा घर खटमलों से भरा रहता है।

नदी के दाहिने तट पर डू चू समडो नामक चरागाह है जो चीड़ के बन को साफ कर के बनाया गया है। यहा फिर

भयंकर हास मक्खी मिलती हैं। चू जांग से रांगबू गोम्पा के रास्ते पर भी यह स्थान पड़ता है। गोस्टा ला की चढ़ाई (१६३८० फुट) बहुत आनन्द प्रद है। इसके पास—पड़ोस की कई चोटियों की ऊंचाई स्थिर नहीं हुई है। साल्विन ब्रह्मपुत्र के वेसिन में यह एक प्रसिद्ध स्थान है। गोस्टा ला से पोयू की ओर देखने पर पहाड़ों की श्रेणियों की श्रेणियां आसाम से लेकर इन घाटियों तक घने बादलों के झुण्ड पानी की धार बरसाती हुई दिखाई देती हैं। डू चू समडो और लिंग चू के बीच में डियु ला पड़ता है जो १६७८० फुट ऊंचा है। इसी पर होकर रास्ता जाता है। दर्रे पर चढ़ाई सरल है। और उतनी ही सावधानी से चढ़ना पड़ता है जितना ट्रे शिस जांग से नीचे उतरते समय रास्ता उजाड़ देश से होकर जाता है। जहां शायद ही कोई पेड़ या झाड़ी मिलती है। डियु ला से लगभग सात सौ फुट नीचे आने पर घास का अन्त हो जाता है। इसके ऊपर टूटे हुये चूने-पत्थर के ढाल लम्बे प्रिमुलस, डांडेलियन, पीले गीलर्क, और तेज नीले लैंगोटी से धुके हुये हैं। आगे चलने पर लिंग चू मिलती हैं जो बीस गज चौड़ी एक धारा है। ट्रै शिस अर्थात् 'समुन्नति शिखर' का नाम भ्रमात्मक है। यह और कुछ नहीं केवल बालू-पत्थर की एक नीची पहाड़ी है जिस पर एक छोटा किन्तु अच्छे ढंग का बना हुआ एक जांग है। नीचे एक उजाड़ गांव है जो किसी तरह की उन्नति नहीं कर सकता। फिर समुन्नति और शिखर का अर्थ ही क्या हुआ! किंगडन वार्ड इस स्थान पर शगडेन गोम्पा से आ चुके हैं। नदी के साथ पूर्व ओर घूमकर वार्ड के मार्ग से चलने पर जिकार और टेग ला मिलते हैं।

इसके आगे 'वा' छोड़ने पर यो साथ सालिवन का रास्ता है। नदी यहां एक तंग कारा में बहती है जिसके किनारे इतने अधिक तेज ढाल वाले हैं कि किनारे किनारे कोई रास्ता नहीं जा सकता है। ट्रैशिट में वमगी ला के नीचे गल्ले वाला एक कैम्प में रहता है। यहां कुछ खानपान के सामान और मक्खन मिल सकता है। गल्ले में याक, बकरे, सुअर और भेड़े सम्मिलित हैं। शगडेन गोम्पा के बाद रांगबू गोम्पा मिलता यहां से बाइस मील की लम्बी यात्रा की बाद राऊ मिलता है। रास्ता घास से ढके हुये डोखा ला पर होकर जाता है, जो एक नीचा दर्रा है। यह स्थान नान सो के उत्तरी छोर पर है। दर्रे के ठीक दक्षिण में एक मील है जहां कुछ बतख पानी में तैरते रहते हैं। इसके अतिरिक्त मार्ग मे पशु जीवन का कोई चिन्ह नहीं मिलता है। राऊ में घर लकड़ी के बने हैं। किन्तु यहां खटमल नहीं हैं। झील के पूर्व की ओर की पहाड़ी की चोटी पर (दो हजार फुट) चढ़ने से शगडेन गोम्पा का सारा दृश्य दीख पड़ता है। नीचे उतरने का सारा प्राथः स्लेट और चूने-पत्थर के टुकड़ों से बना हुआ है। गांव पहुँचने के पूर्व चार मील तक इसी प्रकार का मार्ग मिलता है। ट्रैशिम के नीचे लिंग चू की घाटी सपाह, उजाड़ और शुष्क है, जिसमें कंटीली झाड़ी के शिवा किसी प्रकार की वनस्पति का चिन्ह भी नहीं है। गांवों के आस पास ऐसा नहीं है। चट्टाने अधिकांश चूने-पत्थर की हैं किन्तु कहीं कहीं गाढ़े लाल रंग के बालू के पत्थर और स्लेट की हैं। जुलाई के अन्त में यहां छाया में दोपहर का तापक्रम किसी स्थान पर ८० अंश फोरेनहाइट से अधिक

नहीं रहता है। इस स्थान पर कुछ विशेषतायें भी हैं। सिंचाई की हुई जमीन में शहतूत, पीच, नासपाती और वालनट के पेड़ उगते हैं। ऊंचाई पर जूलाई में केवल शहतूत ही पकते हैं, हां, इसी समय नीचे घाटी में अन्य वस्तुयें भी पकने लगती हैं। घाटी में लिजर्ड का साम्राज्य है, जहां चीनी 'पिट वाइयर के बहुत नमूने पाये जाते हैं। दस हजार फुट और नीचे युनान पारकीटों के झुण्ड के झुण्ड पाये जाते हैं। जो कठिन स्वर में बोलते हैं। ट्रैशिस से दूसरी मञ्जिल के आगे नेरा गूंसार पड़ता है जहां से आगे चलने पर एक गांव मिलता है जहां के निवासी उद्यमी हैं और एक बेनी सच्ची कमाई से पैदा करते हैं। एक जिपम्सी का कैम्प ठीक सड़क के किनारे ही पड़ता जहां पानी पीने के लिये शहतूत मिल सकता है।

जिकर में १०१८० फुट पर नाचू के दाहिने तट पर लगभग तीन सौ फुट ऊंचे कुछ अच्छे घर हैं। किन्तु बड़े नहीं हैं। यहां से 'पो' जाकर सालिवन का दृश्य देखा जा सकता है। वा चू के सङ्गम के नीचे और और सालिवन तक लिंग चू एक गहरी कारा में रहती है। रास्ता नदी से २००० से लेकर ३००० फुट की ऊंचाई पर होकर जाता है। पो जिकर से आठ सौ फुट से भी अधिक ऊंचा है, किन्तु गर्मी इतनी अधिक पड़ती है कि उतनी कहीं नहीं मिलती। सारी घाटी मक्खियों से काली है। जिस देश में मक्खियां चेहरे, नाक, कान, आंख, गर्दन, हांथ और खाते समय भोजन पर चिपक जाती हैं तो स्वभाव ही बदल जाता है। हां, एक बात और है, वह यह कि खटमल वहां छत पर भी पाये जाते हैं। जैसा कि कह चुके हैं इनसे

बचने के लिये छत की शरण—उचित होती है, किन्तु चूंकि पो के निवासी गर्मी के कारण छत पर सोते हैं, खटमल भी अपना भोजन खोजते हुये वहां जा पहुँचते हैं। इस प्रकार पो में उनसे बचने का कोई उपाय नहीं है। वे जून से सितम्बर तक घर का निचला भाग त्याग कर लोगों की शांति और आराम की जगह पर ही पाये जाते हैं। शिवू शारकींग ला (१४८६२ फुट) के ऊपर से होकर जिकर से जेपा का मार्ग जाता है; जो सालिवन के दाहिने तट पर है।

तेरहवां अध्याय

ठीक नौ हजार फुट पर जेपा चालिस घरों का एक बहुत सुन्दर गांव है सभी घर नदी के निकट ही बने हुये हैं। गांव के चारों तरफ फसलें उगती हैं जिसमें मक्का, आलू और तरकारियां प्रधान हैं। गलियों में लतायें छाया के लिये लगी हुई हैं और पीच, नाशपाती. बालनट पोमेग्रेनेट, और शहतूत के कुंज हैं पेड़ों पर सैकड़ों हरे रंग के मारकीट बैठे रहते हैं। छोटे और मीठे अंगूरों से सितम्बर में शराब बनाई जाती है किन्तु लोग इसे प्रति वर्ष ताजी ही पीते हैं। आगे के लिये पकाने को नहीं रखते। रास्ते में कुछ बौने मिलते हैं जो जानवर लिये हुये जाते रहते हैं। ऐसे ही कुछ बौने जायुल में भी मिलते हैं। प्रायः साढ़े चार फुट ऊँचे बहुत गोल चपटा चेहरा, गर्दन एकदम नहीं, चौड़े बदन और छोटे पैर होते है। वे इतना अधिक एक

दूसरे से मिलते जुलते हुये हैं कि मालूम पड़ता है ये आदिम जाति के वंशज है। जो बौने हैं वे कुछ सीमा तक गुलाम हैं किन्तु उनकी सीमित बुद्धि के अनुसार वे बहुत आनन्द में हैं और उनके साथ बर्ताव भी अच्छा है। बा चू की घाटी और पो तक का सालिवन का दायां तट सांगचो जांग के आधीन है। जेपा से चार फर्लाङ्ग ऊपर सालिवन पर एक नया चमड़े का पुल बना है जो सत्तर गज लम्बा है। इस पर होकर टट्टू भी चले जा सकते है। वे इस प्रकार के पुलों को पार करने में अधिक अभ्यस्त हो जाते हैं कि पैर के नीचे एक चमड़े की रस्सी के सहारे ही पार कर लेते हैं और बीच में पैर चलाना या परेशानी दिखाना ऐसा त्याग देते हैं मानों सारे कष्टों को झेलने के लिये तैयार हैं। हां किनारे पर जमीन पर आने में कठिनाई अवश्य पड़ती है क्योंकि बिना अधिक सहारा दिये चट्टानों पर लुढ़क जाते हैं। आठ जानवर, तीन बोझे और एक कारवां को पार करने में तीन घण्टे का समय लग जाता है। दोनों किनारों पर पन्द्रह बीस आदमी सहारा देने के लिये होने चाहिये। सालिवन की घाटी का यह भाग लिंग चू की घाटी से बहुत मिलता जुलता है। रास्ते की जलती हुई चट्टानों के बाद टोंटपर की यात्रा में नरम हरे पौदे और मैदानों को देख कर थकावट दूर हो जाती है। पाशू पहुँचने के लिये नदी को कुछ देर के लिये छोड़ना पड़ता है किन्तु टूटे पुल के पास शारी जांग में नदी फिर मिल सकती है। पांच हजार फुट से अधिक चढ़ाई के बाद डेल्टा (१३६६० फुट) मिलता है। इस पर एक छोटा और सरल ढाल है जिसके अन्त में थेंथोक

गोम्पा का संघ मिलता है। यह संघ एक पहाड़ी पर बना है, इसकी इमारत बहुत सुंदर है और इसमें सौ बौद्ध-भिक्षु रहते हैं। गांव के पास सायी चू में पन्द्रह भयंकर गुफायें हैं। थेंघोक गोम्पा सालिवन से केवल सात मील ठीक उत्तर-पश्चिम है किन्तु इस नदी और मीकांग के बेसिन के पठार पर स्थित है। इस कारण जब कि सालिवन यहाँ लगभग ८६०० फुट पर बहती है—सायी जू यद्यपि एक बड़ी नदी है फिर भी १२९०० फुट से ऊंचे पर बहती है।

छम्दो—मीकांग या छम्दो सांगबो जांग सड़क से दक्षिण की ओर यात्रा करने पर एक छोटी धारा के किनारे पर होता हुआ रास्ता जाता है जमीन बसन्त के सुन्दर गहरे नीले, पीले और पीले जेनिशन के फूलों से कहीं कहीं ढकी है। जेपा से होकर केवल नेगांग और पोयू को मार्ग गया है। प्रारम्भ में याक, बकरे और भेड़ के गल्ले मिलते हैं और खच्चर के बड़े बड़े कारवां यूनान से चाय लेकर जालासा जाते रहते हैं। कारवां प्रायः सभी चीनी लोगों का होता है। किसी किसी के पास आज कल की राइफलें भी रहती हैं। मार ला १५७०० फुट ऊंचा है। यहां ऐसे ग्रास हापर पाये जाते हैं जो प्रायः बहुत कम या कहीं नहीं मिलते हैं। इस पर से सालिवन की घाटी दिखाई पड़ती है। पश्चिम की ओर बहुत दूर बहुत से ग्लेशियर और कुछ चमकती हुई सफेद चोटियां सालिवन और सेंगो चू के बीच देखी जा सकती हैं किन्तु नदी के पूर्व की ओर स्थायी बर्फ नाम की कोई चीज नहीं है और ऊंचे से ऊंचा पहाड़ भी सत्रह हजार फुट से अधिक नहीं हैं। मार ला के

नीचे के मार्ग पर कुछ मील तक ढालू और टूटे हुये पहाड़ मिलते हैं जो अच्छे रास्ते नहीं कहे जा सकते। प्रायः एक एक करके कारास्रों को पार करना अच्छा होता है क्योंकि जमीन के सरकने से रक्षा हो सकती है। एक स्थान पर तो दो फुट चौड़ा पार करने का मार्ग मिलता है जिसके नीचे गहरी खाई है। रास्ता अत्यन्त संकीर्ण और पत्थरों से बनाया गया है। सिटुख पहुँचने के छः मील पहले से रास्ता गहरे खण्ड पर होकर गया है जो शुष्क, सपाट-उजाड़ और तांबे की तरह गर्म है। एक छोटी सी धारा भी मिलती है जो पेटी में धीरे धीरे बहती रहती है। गर्म चाहे जितना हो, यह प्रदेश किसी प्रकार सिंचाई कर देने से अधिक उपजाऊ है। धारा के किनारे तीन गांव हैं जो फल के बाग से घिरे हुये हैं। पास में गेहूँ, जौ, ज्वार, बाजरा, जई मटर, लौका, प्याज और मिर्चा के छोटे छोटे किन्तु अच्छे खेत हैं। इसके पास-पड़ोस का सारा प्रान्त बहुत टूटा फूटा हुआ है, ढालों पर अनेकों तेज ढालदार बहाड़ियां गुथी हुई हैं और पांच सात मील तक सालिवन की घाटी के किनारे आठ हजार फिट से भी अधिक ढालू हैं।

सिटुखा ८४१० फुट पर सालिवन के बायें तट पर चौदह घरों का एक गांव है जिसमें एक अच्छा आराम-घर भी है। सिटुको के घर विशेष कर आरम घर निर्दोष सांपों से भरे हैं। ये साँप चार फुट से अधिक लम्बे होते हैं और प्रायः सभी चूहे खाकर रहते हैं। ये छतों में रहते हैं और बाहर झांकते हुये या इधर-उधर जाते हुये देखे जा सकते हैं। जहां तक सिटुखा का सम्बन्ध है, ये सांप यहां स्वयं आ गये हैं किन्तु उत्तरी

चीन के कुछ भागों में तो लोग बिल्ली के स्थान पर इन्हें घर में रखते हैं और बाजार से खरीद कर लाते हैं। उनके लिये ये मूल्यवान घरेलू साथी और रक्षक हैं। नदी पर चमडे के पुल पर से होकर पार जाना पड़ता है जो बहुत टूटा फूटा और पतला है। नीचे नदी का गन्दा पानी उबल उबल कर फेनदार धारा में बहता है। सचमुच आधे पुल पर पहुँच जाने पर ही ज्ञात होता है कि अब जीवन कितना अरक्षित है। उस पार जाने पर नदी की धारा के साथ राजकीय मार्ग जाता है। वोसीथंग में इसे छोड़कर सांगचो जोंग रोड़ पर चलना सुविधा जनक है। यहां के अंतिम तीन दिवस साल्विन दर्शन अध्याय के अंतिम अक्षर हैं। पूरी यात्रा में साल्विन का दृश्य ही अन्त में हृदय पर छाप जमा देता है। घाटी का पश्चिमी किनारा धीरे धीरे दो मील तक पहाड़ों तक चला गया है। ये पहाड़ कारात्रों और पत्थरों के समूहों से ढके हैं। बीच बीच में पानी की धाराओं जैसे खांइयों और कुछ नदियों से कटे हुये है। पूर्व की ओर ऊपर से लेकर नीचे तक तेज ढाल हैं जिनमें सूनसान संकीर्ण दर्रे हैं। दोनों ओर के ढालों पर नदी के एक हजार फुट ऊंचे तक केवल सूखी घास और कांटों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यहां जहां तक दृष्टि जाती हैं इसी चारे को चरते हुये बहुत से जानवर, भेड़ें और बकरे पहाड़ियों पर दिखाई देते हैं। साल्विन यहां चौड़ी और स्थिर धारा में धीरे धीरे ब्रह्मा की ओर बहती है। दिन में भूरी और गन्दी रहती है किन्तु संध्या समय रङ्ग रङ्ग के

बादलों की परछाईं पानी में पड़ कर दृश्य को मनोहर बना देती है। कहीं कहीं नदी के तट पर जहां हरियाली है, गांव या केवल एक घर बस गया है। गर्म और सूखे वातावरण में कभी कभी मन्द स्वर से बजती हुई गड़रियों की मधुर बन्शी की ध्वनि हवा के झोकों के साथ कान में अमृत घोल देती है सिटुखा और वांसी थंग के बीच रास्ते में एक सफेद चार्टेन है जिसके बगल में पत्थरों का वर्गागार चबूतरा बना है। यहां कुछ नंगे लड़के धूप में ध्यान में मग्न खेलते दीख जाते हैं जो जल्दी से मंदिर की ओट में छिप कर झांकने लगते हैं और दस गज से दूर पर ही अपनी गोल आंखों से देखते रहते हैं मानों किसी क्षण भागने के लिये तैयार खड़े हैं। वो की थंग जाने के लिये ल्हो चू की विरुद्ध दिशा में जाना होता है। अब सालिवन सदैव के लिये छूट जाती है।

किन्तु सालिवन छोड़ने का दुःख एक बात से कम हो जाता है कि यहां से लेकर सांगचों जांग तक प्रदेश की खोज यूरोपियन यात्रियों ने नहीं की है। फिर, ब्रह्म पुत्र वेसिन में स्थित जल-मार्ग को अभी एक बार और पार करना पड़ेगा। यहां से भारतवर्ष इतना सन्निकट आ जाता है मानों कोने पर ही मोटरें गाड़ियां, पत्र, मछलियां, सुन्दर स्नान, चीनी प्लेट और शराब हमारी वाट जोह रही है। ल्हो चू के वर्तमान धरातल के ऊपर दो सौ फुट तक घाटी बर्फ से सजी हुई है। ग्लेशियर फिसल कर तल पर ग्रेनाइट के समूह छोड़ गये हैं। घाटी के किनारे के चूने-पत्थर के समक्ष ये उसी प्रकार लगते हैं जैसे इंगलैण्ड

में नीग्रो लोग। नीचे के ढाल चाहे जिसके बने हों, इससे यही सिद्ध होता है कि नदी के सिरे मुख्य श्रेणी—विशेषतः ग्रेनाइट की बनी होगी। आगे बढ़ने पर १२५०० फुट की ऊंचाई पर बीस गज की परिधि में चार गर्म सोते हैं जो—मिल कर एक हो जाते हैं। उनमें सब से गर्म १३३° फारेनहाइट है और सभी से सल्फ़र की तेज गन्ध निकलती रहती है। मिशमी पहाड़ियों पर होकर डेनिंग जाने के लिये यहीं पर रांगटो ज़िले से कुली इकट्ठा करना पड़ता है जिसके लिये मजिस्ट्रेट की आज्ञा अनिवार्य है। डेनिंग शिकर्थंग से पन्द्रह से सत्रह मञ्ज़िलों पर अंतिम पूर्वी अंग्रेजी चौकी है। इस यात्रा में तिब्बती लोगों को साथ लेना अच्छा होता है और आवश्यक भी हो जाता है क्योंकि मिशमी लोगों को कुली के काम के लिये तैयार कर सकना अधिक कठिन है। अगर जायुली लोग—आधे रास्ते के लिये मिल भी जावें तो बहुत संभावना रहती है कि लोहित की घाटी में वे भी विदा हो जावें और फिर आगे बढ़ने के लिये कोई साधन ही न मिले। अगर अभाग्यवश ऐसा ही हो जाय तो वहां महीनों तक बैठे रहने या सारे सामान छोड़ कर आसाम चले जाने के अतिरिक्त कोई चारा ही नहीं रह जाता है।

जुक ला से होकर जाने पर सोलह मील पर गोस्टांग का "कैम्पिग—ग्राउण्ड" मिलता है। बर्फ गिरते समय दर्रे पर अधिक कार्य नहीं हो सकता है जैसे मानचित्र बनाना—देशान्तर लेना, ऊंचाई स्थिर करना इत्यादि। ऐसे समय दर्रे पर सौ गज से अधिक नहीं दिखाई देता है वह भी धुँधला रहता है। नीचे

सालिवन-दर्शन

घाटी में उतरने पर ऐसा लगता है मानो ज्ञायुल के चीड़ देश में फिर आ गये हों। यद्यपि घाटी का तल तेरह हज़ार फुट ऊंचाई पर है इससे पेड़ नीचे पेटी में ही हैं किन्तु इतने घने हैं कि—रांगटो का ध्यान आ जाता है। गोस्टांग जंगलों के साफ़ किये हुये भाग में है जो बहुत ही सुख दायक है। जुक ला यद्यपि-वाटर शेड पर है फिर भी १८४१० फुट ऊंचा है। पूर्व की ओर से चढ़ाई सरल है किन्तु गोस्टांग से ढालू है। वैसे तो पर्वत की श्रेणी कहीं भी सत्रह हज़ार से कम ऊंची नहीं है, किन्तु अधिकांश स्थानों पर बीस हज़ार फुट तक ऊंची है। इसको दृष्टि में रखते हुये जुक ला—बहुत नींचा है। गोस्ठांग चमन्यू नदी के ठीक बायें तट पर है। इस नदी का यह नाम इसलिये पड़ा कि इसमें बाढ़ अचानक ही आ जाती है। चमन्यू का अर्थ है!

घाटी में गर्मी और बसंत में जानवर चरते हैं। चमन्यू के दो सौ फुट ऊपर तक कुहरा पड़ने पर अभाग्य वश यदि बर्षा भी हो जाती है तो वातावरण सर्द और नम हो जाता है। झोपड़ी में आग जलाने पर कोई—कष्ट नहीं होता किन्तु लकड़ी बहुत तेज जलती है जिससे इतनी चिनगारियां उड़ती हैं कि पल भर में कागज इत्यादि काले हो जाते हैं। इस कारण कुछ भी लिखने-पढ़ने का कार्य नहीं हो सकता है कैम्प के पास ही कुछ चेरी के पेड़ हैं जिनके फल छोटे चमकीले लाल किन्तु बहुत तीखे होते हैं। इसके फल गुच्छों में नहीं वल्कि एक एक फलते हैं। यहां से चार मील पर जानवरों के चरने योग्य स्थान है जहां मक्खन, पनीर, कई और दूध बनाया जा सकता

है। यहां लोगों को जब विदेशियों या अपरिचित लोगों का भय होता है तो वे औरतों को छोड़कर जंगल में भाग जाते हैं। इसमें कई चालाकी रहती है। एक तो यह कि वे स्त्रियां वहां रह कर गल्ले और अन्य सामान की रक्षा करें और जैसा कुछ रुख हो उसे देखती रहें और यदि कुछ नुकसान भी हो जावे तो उसकी सूचना देवें सब से बड़ी बात यह है कि औरतों को कोई बदमाश से बदमाश आदमी तिब्बत में न पीटता है न उन्हें जान से मारता है। इससे वे औरते उन्हें अर्थात् अनजान डाकुओं को हानि पहुँचाने से मना करने के लिये छोड़ दी जाती हैं।

दूध को तो छोड़ देते हैं किन्तु तैयार मक्खन को ऐसी परिस्थिति आने पर पास की किसी नदी में गाड़ देते हैं। उनकी शंका उचित मूल्य देने पर दूर हो जाती है और वे पाक, के लिये सारे सामान और सम्बा तक बाजार भाव पर बेंचने के लिये तैयार हो जाते हैं। जुक ला गोस्टांग छः मील है।

अब सालविन-ब्रह्मपुत्र जलविभाजक की यात्रा का अंत होता है। इस प्रकार यह जलवभिाजक छः बार आता है—टुंगला, गोस्टा, डोखा, ट्रंग और जुक दर्रो पर। यह वाटर शेड प्रायः स्लेट और चूने-पत्थर का बना है और कहीं कहीं बालू बालू-पत्थर भी मिलते हैं। इसके नीचे अधिकांश यह ग्रेनाइट का है। नेगांग चू के दक्षिण की श्रेणियां, चिएडू और कांगरी कर्पो दर्रो के पास की चट्टानें चूने-पत्थर और स्लेट की हैं, अटा कांग ला के निकट वाली ग्रेनाइट की हैं और शगडेन गोम्पा

सालिवन-दर्शन

के पास चूने-पत्थर और स्लेट की हैं। पर्सटंग से शिक गोम्पा की यात्रा में ये पहाड़ियां नहीं दीख पड़तीं, हां शगडेन गोम्पा से—डैशिंग तक बर्फ ही बर्फ है और १८००० से २०० फुट तक ऊंची हैं। नान सो के पश्चिमी छोर से शोवा तक नेगांग चू एक सीधी रेखा में बहती है। दक्षिण की श्रेणी में यद्यपि ऊंची है किन्तु बहुत संकरी है। शगडेन गोम्पा और पर्सटंग के बीच में यह लगभग पचीस मील चौड़ी है और कम से कम दस मील।

सन् १९३४ में किंगडन वार्ड ने कहा था कि नेगांग चू हिमालय के पूर्वी श्रेणी को दो बार काटती है, किन्तु यह ठीक नहीं है। इसके पतलेपन के होते हुये भी यही धारणा बंधती है कि यह पर्वत श्रेणी हिमालय का अंग प्रसार ही है जो आसाम की उत्तरी-पूर्वी प्रोमोण्टरी के किनारे घूमकर दक्षिण की ओर सालविन ब्रह्मपुत्र या सालविन-इरावदी विभाजक के नाम से चली गई है। वरर्ड के इस विचार को ध्यान में रखने से कि तिब्बती नदियां हिमालय को अत्यधिक ऊंचाई पर ही काटती हैं, कुछ बात विचारणीय हो जाती है। शोवा के दक्षिण और सू ला के पश्चिम में यह श्रेणी २०००० फुट से भी अधिक ऊची है जिसमें ठीक सामने पांगपो गार्ज के दूसरे किनारे पर पर नामचा बारवा है। यदि यह ऐसा ही अर्थात् यह ठीक है कि हिमालय पर्वत श्रेणियां नमचा बरवा से पूर्व और दक्षिण की ओर घूमती हैं, तो इसका यह अर्थ होगा—कि ट्रेग ला के पश्चिम में सालविन ब्रह्मपुत्र वाटर शेड उसी समय ऊपर उठ आया जब कि हिमालय। इस प्रकार यह हिमालय का समव-

यस्क है और उसका एक अंश है।

डिङ् ला पार करने पर एक तंग घाटी किलती है जिसके ढाल बहुत तेज हैं और जो जंगल से भरी है। एक दिन बाद पाशो आता है। पाशो में कुछ नही है केवल नाम ही है। यह एक दम मामूली गांव है। जैसा कि 'शो' का अर्थ "घाटी के तल पर चौड़ा स्थान" है, यहां के गत्रीस घर एक छोटे मैदान में बसे हैं जिनके बीच बीच में गेहूँ, जौ और तरकारियों के खेत है। ये घर पाइलों पर लकड़ी के बने हैं जिनकी छतें ढाल दार हैं। पोयू छोड़ने के बाद इस प्रकार के घर में ही हैं। फिर चीड़ की ऊंचाई पर इतनी सर्दी है कि मक्खियां नहीं मिलती हैं। यदि पाशो चू की धारा के साथ सीधे चलें तो यहां से सांग चो जांग एक दिन का मार्ग है।

चौदहवां अध्याय

पाशो और शगडेन गोम्पा की यात्रा कोई कारवां एक दिन में नहीं पूरा कर सकता है। प्रथा यह है कि किसी दिशा में यात्रा करे डामा ला के पहिले रुकना पड़ता है। गांव से कठिन चढ़ाई के बाद वृक्ष सीमा मिलती है जहां डामा ला के किनारे छोटे छोटे घास के मैदान हैं। डामा ला दस लज चौड़ी और काफी गहरी धारा है। यहां से प्रायः सारा का सारा मार्ग साधारण कंटीली झाड़ियों और जेनिशन के सुन्दर फूलों के झुण्डों से होकर जाता है। कहीं क हींछोटे खरगोश वालड़रों के इधर उधर टहल रहे हैं और कुछ तितलियां बसंत की कठिन सर्दी में दिन काट रही हैं। नदी के किनारे रास्ता नम और

जमा हुआ है किन्तु आगे चलकर नदी के बलुई तलहटी में दो चौड़ी धारायें हो जाती हैं। यहां दर्रा एक टूटी हुई चूने के पत्थर की पहाड़ी को १५४६० फुट पर एक नदी के केवल तीन सौ फुट ऊपर द्वार करता है। यह नदी जायुल की शाखा है। कुछ दूर से डामा ला पर पश्चिम से चढ़ने वाला मार्ग बिल्कुल— नहीं दिखाई देता है। यह श्रेणी इतनी साधारण है कि मालूम होता है कि घाटी का सच्चा किनारा आंखों से ओझल कई मीलों के बाद मिलेगा। गर्मी का मार्ग जो ला दर्रे पर से पूरा दिखाई पड़ता है। बेली और किंगडन वार्ड ने भी इस मार्ग को मानचित्र पर नहीं दिखाया है।

डामा ला पार करने पर उन्नीस मील की लम्बी मात्रा के बाद शगडेन गोम्पा मिलता है। डामा ला के बाद की घाटी को जोड़ में लोग याक और भेड़ों के साथ छोड़ देते हैं, यहाँ तक कि अधिकाँश चिड़ियां भी चली जाती हैं। नान सो नदी जाड़े में पहाड़ों पर बर्फ जमी रहने और ग्लेशियरों के बहुत धीरे धीरे गलने से आधी रह जाती है है। जो छोटी छोटी धारायें इसमें पानी लाती हैं वे भी पहली चौड़ाई के स्थान पर आधे से कम हो जाती हैं। सर्दी बढ़ने पर खुली हुई सँगो चू की घाटी में चारों ओर बर्फ ही बर्फ जमी दीख पड़ती है, इससे कैम्प में आग जलाना अनिवार्य हो जाता है। इस कारण टूंग ला की यात्रा में दर्रे से चौदह-पंद्रह मील दूर ही कैम्प लगाना होता है।

कारण यह है कि १४४४ फिट से अधिक ऊंचाई पर जलाने को कुछ नहीं मिलता है और न चौरस स्थान ही मिलता

है जहां झाड़ियां हों नदी के किनारे घास के टुकड़ेदार मैदान मिलते हैं। दर्रे के नीचे घाटी के अन्तिम तीन मील लुढ़के हुये बोल्डरों से भरे हैं। चोटी पर कथनांक अधिक से अधिक ९१०° है। घाटी में बर्फ के तूफान चलते हैं तो कोई रुकावट न होने से सीधे दक्षिण से बढ़ते हुये चले आते हैं। सब कुछ बर्फ से ढँक जाता है और आंखों को रास्ता नहीं सूझ पड़ता हवा इतनी तेज बहती है कि कपड़ों को फाड़ कर देह में घुसती सी मालूम होती है। यहाँ से मुश्किल से दो मील आगे बढ़ने पर रास्ते के निकट ही कुछ रोडोडेण्ड्रन की झाड़ियां मिलती हैं जिनसे अच्छी आग तैयार की जा सकती है।

पाश से आगे गोंचेन पड़ता है जो नांगचो जांग से ढाई मील पूर्व और जायुल नदियों के संगम के निकट बिखरा हुआ एक बड़ा गाँव है। शिकधंग के लिये चार रास्ते सम्भव हैं इनके अतिरिक्त जायुल के विरुद्ध दिशा में मुड़ने से वह मार्ग मिलता है जिसकी पूरी खोज सन् १९११ में कर्नल बेली ने की है। घाटी के किनारे ढालू हैं और चीड़, बर्च, ओक और हूली के घने जंगलों से ढके हुये हैं। आगे के उत्तर वाले रास्ते में पत्थर के छोटे छोटे टुकड़े हैं और वह बीच बीच में टूटा हुआ है। उससे अच्छा तो चीड़ वाले रास्ते से होकर चलना है। नदी ने शायद अपनी धारा का मार्ग कई बार बदला है क्योंकि घाटी का निर्माण ग्लेशियरों से हुआ है। लोमा की लम्बी यात्रा में एक स्थान पर पांच टेरेस मिलते हैं जो नदी के पूर्व की ओर बढ़ती जाने से समय समय पर बने हैं। इस समय ज्ञात होता है नदी फिर दूसरे तट की ओर बढ़ रही है।

सालिवन-दर्शन

गोचेन और ड्रोवा गोम्पा के बीच में रास्ते भर घाटी के किनारे नदी तक सीधे नीचे चले गये हैं और लोना के अतिरिक्त रास्ते में तीन घरों का एक गांव और मिलता है। यद्यपि नाम बहुत लम्बा चौड़ा है फिर भी जामुट्राफुक गांव नहीं है बल्कि बहुत ऊँची छिछली गुफा है जिसमें घूमने के लिये पचास फुट ऊंचा और तीस फुट चौड़ा एक दरवाजा है। यह नदी के किनारे पर स्थित है जो यहां एक गहरी कारा में बहती है और पास के मौसम से इतना सुरक्षित रहती है कि बलुई तलहटी इतनी शुष्क है जैसे हड्डो। गोचेन से १०७४५ फुट की ऊँचाई धीरे धीरे कम होती जाती है, यहां तक ड्रोवा गोम्पा पहुँचते पहुँचते ऊंचाई ८१४० फुट ही रह जाती है। इसके नीचे घाटी कहीं कहीं तीन या चार सौ गज चौड़ी हो गई है जिसमें चिकोंग तक बहुत सी छोटी छोटी बस्तियां हैं जिनके घर प्राय: एक कमरे के हैं और जो बहुत नीचे पाइल पर या प्राय: जमीन के तल पर ही बने हुये हैं। चिकोंग से आगे से जहां कि जायुल नदी प्राय: ठीक पश्चिम बहती है, घर बहुत अच्छे हैं जो छ: फुट ऊँचे पर बढ़िया छतदार बने हैं। इसका कारण यह है कि यहां वर्षा उन स्थानों की अपेक्षा अधिक होती है, यद्यपि बहुत अधिक वर्षा कभी नहीं होती है। ड्रोबा गोम को शिकधंग और लेपा में 'जायुल की एक विभूति' और पर्सटक से ऊपर स्थित अन्य ड्रोवागम्पा का पिता कहते हैं, किन्तु कितना खेद होता जब देखते हैं कि यह स्थान छोटा और गिरी दशा में है और तेरह बौद्ध भिक्षु अपने अपने घरों में रहते हैं। केवल एक घर ठीक दशा में है जिसकी देख भाल के लिये एक आदमी

नियुक्त रहता है। इस घर में दौरे के समय जांगपून आकर ठहरता है।

संघ के ठीक उत्तर की ओर एक बड़ी नदी है जिस पर लकड़ी का पुल बना है। शिकघंग जाने वाले व्यापारियों से यहां प्रति जोकुली या टट्टू छः पेंस और प्रति गधा, चाहे सामान हो या न हो, चार पेंस के हिसाब से कर लिया जाता है। लौटते समय उन्हें मुफ्त पार करने दिया जाता है। ये व्यापारी दिसम्बर और जनवरी में छुम्दो से जायुल को चावल और गेहूँ की फसल खरीदने और उन जायुली लोगों से मिलने आते हैं जो सदिया और कलकत्ता से व्यापार का सामान लाते हैं, जैसे रेशम, सिगरेट, दियासलाई, प्रोकेट चाकू और सूती कपड़े। वे अपने साथ यहां से नमक, तलवार, छुरे और हीरे जवाहरात के सामान ले जाते हैं। इन महीनों में शिकघंग एक प्रसिद्ध बाजारू स्थान बन जाते है, हां साल के अन्य महीनों में इसका ध्यान ही नहीं आवेगा। जैसे जैसे आगे बढ़ते हैं झाड़ियां ग्रास हापरों और प्रार्थना मग्न माण्टिसों से भरती जाती हैं और अक्तूबर के अन्तिम समय में भी सैकड़ों तितलियां मिलती हैं। यहां विष रहित सांप, भालू, कस्तूरी वाले हिरन और सुअर भी रहते हैं। डावल्हा के रास्ते पर बहुत सी पक्की लीचियां किनारे किनारे मिलती हैं। ब्लिस्टर और सैण्ड फ्लाई भी कहीं मिल जाती हैं किन्तु अधिक नहीं हैं। हार्स फ्लाई तो कहीं एक भी नहीं दिखाई पड़ती। शिकघंग की यात्रा में ट्रेबा पड़ता है जहां आठ दस घर ऊंचाई पर बने हैं किन्तु जैसी कि प्रथा है बार्जे नहीं हैं और न सीढ़ी के सिरे पर तंग और एक गज

चौड़े स्थान के अतिरिक्त और कुछ ही होता है। यहां से सात मील पर शिकघंग है। रास्ता खच्चरों के लिये बना है जो अच्छा नहीं है। इस यात्रा में कीड़े बहुत मिलते हैं क्योंकि झुण्ड के झुण्ड तितलियाँ, मक्खियाँ, बर्र मकड़ियाँ, मुबरैले, शहद की नक्खियाँ और बड़े बड़े भूरे हार्नेट भरे पड़े हैं। छम्दो से रांगटो की घाटी जाने वाले व्यापारियों से जायुल पर प्रति छः बोझ या इसके भाग पर छः पेंस कर लिया जाता है जो डोवा गोम्पा से बहुत कम है। जायुल में मुर्गियां बलि देने के लिये सुरक्षित रक्खी जाती हैं जैसा कि खानंग और मिशमी लोग करते हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से बीमारी पैदा करने वाले शैतान दूर रहेंगे और देवता गण प्रसन्न होकर बीमारी से मुक्त कर देंगे। अवश्य ही, यह प्रथा बौद्ध और लामा लोगों के नियम के विरुद्ध है, जिससे तिब्बत की सरकार इस प्रथा को सुरक्षित विदेशियों को इस जिले में रहने के लिये प्रोत्साहन देकर दूर करना चाहती है।

पंद्रहवां अध्याय

जायुल में नमक एक दम नहीं निकलता किन्तु चावल खूब होता है। मींकांग की घाटी के पूंजीपति और व्यापारी यहां नमक लाते हैं और उसका दूना चावल ले जाते हैं। एक अवस्था यह आ गई कि जायुल के लोगों ने देखा कि हमारा चावल कम हो रहा है और घर भर नमक से भर चुका है। उन्होंने अपनी गलती समझी और नमक को बराबर भाव के अतिरिक्त लेमे से इन्कार कर दिया व्यापारी सोचते हैं कि जायुल में नमक न

होने से यहां के लोग नमक खरीदेंगे चाहे कुछ काल बाद ही। इस प्रकार शिकथंग में भी व्यापार सम्बन्धी झगड़ा चलता है जिसमें पूंजीपति अन्त में मुंह की खाते हैं।

शिकथंग में ज़ायुल और रांगटो चू दोनों नदियां साफ और हरे रंग की हैं। रांगटो चू गर्मी में सफेद रहती है और जायुल सदैव हरे रंग की। रांगटो चू की घाटी में वर्षा होने से तटों पर के सिल्ट बहकर नदी में जाते हैं—विशेष कर ज़ायुल नू चू के सिरे पर। जहां ग्लेशियर की ही कीचड़ अधिक है। इससे दोनों घाटियों की जलवायु की भिन्नता प्रमाणित होती है। रांगटो में जो कुछ नमी आती है उसका अधिकांश पहाड़ों की दीवार से बन्द हो जाता है। इस कारण ज़ायुल नदी की घाटी अपेक्षाकृत से शुष्क है। लोहित या रांगम चू को एक बड़े रस्सी के पुल से पार करने पर रास्ता बहुत अच्छा मिलता है खच्चरों का मार्ग है। कुली लोग—अधिक बोझ लेकर एक बार में आठ मील से अधिक नहीं चल सकते। मिशमी लोगों के खाने भर के लिये लोहित की घाटी में बहुत पैदा हो जाता है और अधिक बचता नहीं है। यहां से होकर जाने वाला यात्री समयानुसार एक मुर्गा या कुछ अण्डे खरीद सकता है। इस कारण सारा सामान साथ ले चलना पड़ता है। कुली लोगों को तो बोझ के अतिरिक्त अपना पूरा राशन लेना पड़ता है। नदी को रस्सी के पुल पर पार करने पर साढ़े पांच मील की छोटी मञ्ज़िल के बाद एक छोटा गांव मिलता है जो नदी से प्रायः छः सौ फुट की ऊंचाई पर बसा है। यहां कमरे बहुत छोटे हैं प्रायः दस फुट लम्बे और छः फुट चौड़े, जिनकी दीवार में

छेद बना कर अन्दर घुसते हैं। यहां से कुली लोग नाचते गाते विदा हो आते हैं जिसमें गांव के अधिकांश लोग भाग लेते हैं। पुरुष लोग खूब शराब पीकर नशे में खूब गाते हैं। और औरतें, कुछ गम्भीर होने के कारण विशेषतः अपने नाच गान करने में कोई कोर-कसर नहीं उठा रखतीं।

घाटी के दोनों किनारे देवदार के घने जंगलों से ढके हैं किन्तु अगले तीन दिनों रास्ता अधिकांश नीची झाड़ियों और से होकर जाता है। रांगटो की घाटी में जाड़ा बिताने के लिये मिशमी लोगों के झुंड उत्तर की ओर जाते हुये मिलते हैं। बहुत से कम मिशमी व्यापारी आसामी भी बोल लेते हैं। अंग्रेजों या विदेशियों को देख कर बड़ा अश्चर्य करते हैं और पूंछ-पांछ करने के लिये रुकते हैं औरतें गाढ़े लाल रंग का ऐंड़ी तक का स्कर्ट पहनती हैं। बदन पर एक छोटी चोली रहती है जिसे छाती के बीच एक बटन से बन्द करती हैं। सजाने के लिये अठन्नी लगाती हैं। कानों में तुरुही की शकल का चांदी का बड़ा सा कर्ण फूल मत्थे पर बिन्दीदार चन्दोवा और गले में चांदी की हंसली पहनती हैं। मिशमी पुरुष भी एक शान्त ढङ्ग के होते हैं और बिना बांह दार खुला जाकेट पहनते हैं जो पुट्ठे तक होता है। यह जाकेट औरतों के स्कर्ट की तरह घर के बुने हुये सूती कपड़े का होता है, किन्तु किनारों पर हरे और लाल बूटे कढ़े होते हैं। एक छोटा अयरन भी पहनते हैं और समूर का एक बड़ा थैला दो इंच के चमड़े के टुकड़े से लटका रहता है। प्राय: वे तलवार लेकर चलते हैं। लोहित के पूर्वी भाग के मिनू मिशमी और स्त्रियों की तरह बालों का जूड़ा बांध कर उस

पर कुछ गज काला सूती कपड़ा पगड़ी के रूप में लपेट लेती हैं। पश्चिमी भाग के लोग अधिक बढ़े हुये हैं जो लगभग सभी बेंत की टोपी लगाते हैं जो "टिन हैटों" की तरह होती है। इस पर तलवार का वार खाली जाता है। इन लोगों में डिगरू, जो डेनिङ्ग और उससे भी आगे तक बसे हैं, और डिवंग के चुलीकट और बेवजिया लोग सम्मिलित हैं। ये हैटों को—बेंचते नहीं क्योंकि एक हैट बनाने में दस दिन लग जाते हैं। बेंच देने पर दुश्मन को मारने का मन चाहा अवसर हाथ लग जाता है, इससे बेंच कर रुपया पाना ही किस काम का। यही सब से बड़ा कारण है कि वे हैट को रुपये पर बेंचने के लिये तैयार नहीं होते हैं।

लोहित की घाटी में शिकार के अधिकार पूर्णतया सुरक्षित हैं और कोई भी अवहेलना होने पर बड़ा वैमनस्य फैल जाता है। यदि किसी प्रकार कोई तिब्बती एक सुअर भी मार डालता है तो—यहां के लोग तुरन्त सदिया-स्थित पोलिटिकल अफ़सर के पास समाचार भेज देते हैं कि हम लोग किसी भी तिब्बती को किसी ओर से अपने देश से होकर न जाने देंगे। तिनाई के ठीक सामने एक टीले पर तिब्बत का अंतिम गांव वेलांग बसा है। भारत से तिब्बत जाते हुये यहीं पर सर्व प्रथम रस्सी के पुल का अनुभव होता है। वेलांग के मार्ग पर कस्तूरी के शिकारी मिलते हैं। इनको भय रहता है कि कहीं कोई आक्रमण न करदे, इससे ये पहले से ही चौकन्ने रहते हैं। कभी कभी ये शत्रु के लिये खुला हुआ चाकू लेकर चलते हैं। इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि कस्तूरी का शिकार इस प्रदेश में भयानक

व्यसाय है। वेलांग सिट्रस के पेड़ों का एक झुण्ड है जिसके फल नारंगी और संतरे से मिलते जुलते हैं। अधिक पकने पर ये स्वयं डालों से टूट कर गिरते हैं किन्तु खाने में बहुत खट्टे होते हैं। वेलांग से आगे रास्ता जल्द ही खराब मिलता है जो इधर उधर होकर नदी की पलहरी में बोल्डरों पर होकर गये हैं। बिना काट कर रास्ता बनाये कुली बोझ लेकर नहीं बढ़ सकते हैं। घना जंगल जिसमें बहुत से ओक और कई प्रकार के अंजीर के पेड़ हैं। सीधे नदी तक चला—गया है। बीच बीच में गांवों के बस जाने से सफाई होने के कारण लम्बे रीड् के पेड़ टूट गये हैं। घाटी घुमावों के कारण कुछ मील का दृश्य कभी कभी दीख जाता है, जिसके अतिरिक्त और कुछ दर्शनीय नहीं है। वेलांग और थेरोन—लिआंग के बीच में एक भी लीच कीड़ा नहीं दिखाई देता है।

मिशमी लोगों के बारे में तिब्बत और भारतवर्ष में बुरी धारणा है किन्तु, यद्यपि वह कभी कभी वह स्वयं बुरी तरह वर्ताव करता है, इसकी बदनामी का कारण सीधे यही है कि वह उच्छृंखलता की छाप अपनी सैलानी आदत के कारण सभी पर छोड़ देता है। तब लोग इससे खरा वर्ताव करने लगते हैं और वह तुरन्त उबल पड़ता है। इसका कारण यह है कि वह इतना स्वतंत्र और स्वच्छन्द है कि वह किसी की भी लेशमात्र परवाह नहीं करता है चाहे वह यूरोपियन हो या—एशियन हो फिर भी इसके लिये उसे दया करनी चाहिये न कि उस पर दोषारोपण करे। यदि आप उन्हें जानने-पहचानने

लगें तो प्रायः वे जल्द पक्के मित्र बनकर दया करने वाले और आज्ञाकारी बन जाते —डिगारू लोगों से मिजू लोगों में यह गुण अधिक होता है। साधारण खुले देश में मिशमी अधिक तेज नहीं चल सकते। क्यों कि वह छोटा होता है जिसके कदम छोटे होते हैं, किन्तु अपने पहाड़ी जङ्गलों में वह बिना अधिक परिश्रम के ही उतनी तेजी से चल सकता है। पैरों का अनुमान ऐसा सच्चा होता है जैसे बकरों का, साथ ही साथ फुर्त और चुस्त। अन्तिम छः मील दो घण्टे में समाप्त हो जाते हैं साधारण यात्री इतनी ही दूरी में अधमरा और पसीने में भीग जाता है किन्तु मिशमी कुली के पसीना ही नहीं निकलता। तीन मील प्रति घण्टा की चाल कुछ अधिक नहीं हैं किन्तु लोहित की घाटी में साधारण ढाल साठ अंश का है। अनेकों कगारों पर चढ़ना और उनसे बाहर निकलना पड़ता है, बहुत सी धारायें पार करनी पड़ती हैं और तंग टूटा हुआ रास्ता फिसलने वाला है। सारे मार्ग भर रास्ता ऊपर नीचे चढ़ता उतरता है जिसके ऊपर डाले और लतायें लटकती रहती हैं। बहुत स्थानों पर रास्ते पर पेड़ गिरे पड़े हैं जिससे यह बन्द हो गया है। एक दिन की यात्रा के बाद तिला नामक एक गांव मिलता है जो नदी के पाँच सौ फुट ऊपर बसा है। यहां दस बीस और फूस की झोपड़ियां हैं। तिला ही पहला मिशमी गांव है जो वास्तव में अच्छे ढंग का है और यहां पहुँचते ही तुरन्त समझ में आ जाता है कि हर जगह तिब्बती प्रभाव बहुत पड़ा है। मिशमी लोग नाम मात्र के जड़वादी हैं। गांव के बीच में एक स्थान पर तमाम प्रार्थना-पताकायें हैं। औरतें

चांदी का 'चार्मबाक्स' पहनती हैं। बेलांग तिला के बीच में पुरुष लोग प्रायः नहीं पड़ते किन्तु इसके आगे जहां बहुत से गाँव है, वहां लोग तिब्बती कपड़ों का जाकेट पहनते हैं और मिशमी घरों का बुना हुआ भी जाकेट उतना ही प्रचलित है। है। तिब्बती तलवार "टिंडर बाक्स" का यहां बहुत फैशन है। है। उनमें से अधिकांश आसामी की अपेक्षा जायुली बोलते हैं और शायद यह स्वाभाविक ही है कि उनका झुकाव भारत वर्ष की अपेक्षा तिब्बत की ओर है। थेरालियांग के पूर्व उनका देश अशासित है, यद्यपि वास्तव में आसाम के अधिकार में है। अंग्रेज इस देश में शायद ही कभी जाते हों किन्तु तिब्बती हर साल इसमें होकर आया-जाया करते हैं। और भी, अंग्रेजी शासन को महा युद्ध के प्रारम्भ में बहुत धक्का लगा जब कि उसने सारी पूर्वी मिशमी पहाड़ियों के शासन के लिये लोहित की घाटी से तिब्बत की सीमा तक सड़क बना कर 'रिट्रेंचमेन्ट' के आधार पर फिर पीछे रोलियांग लौटने की आज्ञा दी और इससे वह सड़क बरबाद हो गई। अन्त में, मिशमी लोगों की रांगटों की घाटी में बड़ी पूँछ है और उन्हें अधिकतर टोकरी बनाने का काम दिया जाता है, जब कि आसाम के चाय के बाग उनको कभी कोई काम नहीं देते। इन्हीं कई कारणों से उनका झुकाव भारत की ओर न होकर तिब्बत की ओर है।

तिला से पंगाम तक सारी निचली पहाड़ियां साफ़ कर ली गई हैं, जिन पर पहाड़ी चावल, मक्का, बक-गेहूँ, मिलेट और कुछ स्थानों पर मटर, आलू, और अफीम की खेती होती है

इन स्थानों पर आ जाने पर ज्ञात हो जाता है कि हम कितने सुरम्य देश में हैं। तेज ढालों पर घास के मैदान, गहरी घाटियां चट्टानें, झरने, धारायें और छोटे-छोटे खेत हैं। रास्ते में जाते हुये छोटे छोटे गाँव मिलते हैं। गांव की सीमा के बाहर जाने पर जंगलों के झुण्ड के झुण्ड नदी के दस हजार फुट की ऊंचाई तक दिखाई पड़ते हैं। पंगाम से आगे चलने पर रास्ता अधिकतर फिर जङ्गल से होकर जाता है। दूसरे दिन टाइडिंग नदी मिलती है जिस पर एक नया और बहुत सुन्दर झूले का पुल बना हुआ है। पुल से नदी पार करने पर येरोलिआंग मिलता है। यहां बंगले में बिस्तर, एक स्नानागार मेज, चीनी प्लेट, और लालटेनें हैं। बाग में संतरे के पेड़ लगे हुये हैं। टाइडिंग सैडिल ६०० फुट ऊँचा—अथवा थेरोलियांग से ४०७० फुट ऊँचा है। यहां तक खच्चरों का रास्ता आता है जो आगे डी और उसके दूसरे किनारे तक जाता है। ह रास्ता पूरा सात मील का है किन्तु एक मिशमी—रास्ता ठीक सीधे पहाड़ियों पर होकर भी जाता है जो छः मील लम्बा है। इस साधारण चढ़ाई पर चलना इतना सरल है कि पूरा मार्ग पौने दो घण्टे में तय किया जा सकता है। आसाम के मैदानों का भी सुन्दर दृश्य दिखाई देता है। जङ्गलों से होकर नदियों और झरने बहते हुये दिखाई पड़ते हैं, किन्तु वर्षा का दृश्य उतना मनोहर नहीं होता है। एक यात्रा में अठारह मास तिब्बत और चार मास भारत में बीतते हैं। तिब्बत में कुल तीन हजार मील की यात्रा है जो अधिकांश अज्ञात और दुर्गम भागों से हो कर जाती है।

'भूगोल' का स्थायी साहित्य